पांचाली

उपन्यासकार
यज्ञदत्त शर्मा

पाण्डवों के राजसूय-यज्ञ की प्रतिष्ठा को देखकर जहाँ भीष्म, विदुर, और द्रोणाचार्य को हार्दिक प्रसन्नता हुई वहाँ कौरव-कुल पर आतंक के बादल छा गये। उनके दिलों में द्वेष की ज्वाला भयंकर रूप से प्रज्ज्वलित हो उठी।

ये लोग खाण्डवप्रस्थ से हस्तिनापुर पहुँचे तो दुर्योधन ने अपने मित्रों तथा भाइयों की एक सभा बुलाई और उसके बीच खड़े होकर कहा, "देखा आपने पाण्डवों का शक्ति-संचालन ! यह सब हमारे विनाश का सूचक है। ये लोग किसी भी समय हम पर आक्रमण कर सकते हैं।"

दुर्योधन के निरुत्साहपूर्ण शब्द सुनकर महाबली कर्ण ललकार कर, बोले, 'क्या कायरों जैसी बातें कर रहे हो दुर्योधन ? पाँचों पाण्डवों को मैं कीट-पतंगों के समान समझता हूँ। राजसूय-यज्ञ को देखकर तुम लोग इतने आतंकित हो उठे कि उसे अपने विनाश का सूचक मान बैठे।"

दुर्योधन कर्ण की वीरतापूर्ण बात सुनकर चतुराई के साथ बोला, "तुम्हारी वीरता से मैं अपरिचित नहीं हूँ मित्र कर्ण ! परन्तु नीति यही कहती है कि जो गाँठ हाथ से खुल सके उस पर दाँतों का प्रयोग करना व्यर्थ है।"

"मैं तुम्हारा मंतव्य नहीं समझा दुर्योधन !" कर्ण बोला।

दुर्योधन ने मुस्कराकर कहा, "पाण्डवों ने राजसूय-यज्ञ किया है। मैं द्यूत-सभा का आयोजन करूँगा। अब तुम देखना मैं पाण्डवों को किस प्रकार बिना युद्ध के ही परास्त करता हूँ। मैं उन्हें अपने एक दाव पर ही धारों खाने चित न लाया तो मेरा नाम दुर्योधन नहीं।"

शकुनि अपने भाजे दुर्योधन के कुचक्रों से भली भाँति परिचित वह हर्षित होकर बोला, "दुर्यो...

द्यूत-सभा का आयोजन करके पाण्डवों को उसमें निमंत्रित करना चाहिये और जुए की वाजी पर युधिष्ठिर को हराकर उनका राज-पाट उनसे हड़प लेना चाहिये।"

महावली कर्ण वोले, "परन्तु क्या तुम्हें यह आशा है कि महाराज धृतराष्ट्र द्यूत-सभा आयोजित करने की आज्ञा देंगे ?"

दुर्योधन वोला, "उसकी तुम चिन्ता न करो कर्ण ! पिताजी को मैं इसके लिये मना लूँगा।"

दुर्योधन के मित्रों और वन्धुओं में दुर्योधन की वात सुन कर हर्ष छा गया। सव ने एक स्वर में कहा, "द्यूत-सभा में निश्चित रूप से हमारी विजय होगी। हम युधिष्ठिर को उल्लू वनाकर उसे हरा देंगे।"

दुर्योधन द्यूत-सभा की आज्ञा लेने अपने पिता धृतराष्ट्र के पास पहुँचा और विनम्र वाणी में वोला, "पिताजी ! पाण्डवों के विश्वस्त सूत्र से मुझे ज्ञात हुआ है, वे वहुत शीघ्र हस्तिनापुर पर आक्रमण करने का विचार कर रहे हैं। मुझे अभी-अभी इस वात की सूचना मिली है।"

दुर्योधन की वात सुनकर महाराज धृतराष्ट्र हँसकर वोले, "क्या वच्चों जैसी वातें करते हो दुर्योधन ? भीष्म और द्रोण के संरक्षण में जिस राज्य का संचालन हो रहा है, क्या पाण्डव कभी स्वप्न में भी उस पर आक्रमण करने की मूर्खता कर सकते हैं ?"

दुर्योधन वोला, "पाण्डव सीधा आक्रमण नहीं करेंगे पिताजी ! वे छल-वल से हमें ध्वस्त करने की वात सोच रहे हैं। छलिया कृष्ण उनके साथ है। उसके छल को परास्त करने के लिये मैंने द्यूत-सभा आयोजित करने का विचार किया है।"

"द्यूत-सभा !" आश्चर्यचकित होकर धृतराष्ट्र वोले। "नहीं मैं इस घृणित कार्य की तुम्हें आज्ञा नहीं दे सकता दुर्योधन ! इससे हमारी प्रतिष्ठा को वट्टा लगेगा। कुरु-वंश में यह नीच कार्य नहीं होगा।"

दुर्योधन आवेश में आकर बोला, "आपकी प्रतिष्ठा को तब बट्टा नहीं लगा जब पांचाली ने मुझे 'अंधे का अंधा' पुत्र कहा था। आपकी प्रतिष्ठा को तब बट्टा नहीं लगेगा जब आप कृष्ण के छल-बल से परास्त होकर हमें भिखारियों के समान साथ लेकर वन-वन भटकते फिरेंगे। द्यूत-सभा से आपकी प्रतिष्ठा को बट्टा लगेगा तो आप जैसा उचित समझें, करें। हमारे भाग्य में भी जो लिखा है हम उसे भुगत लेंगे।"

पुत्र-मोह में ग्रस्त होकर महाराज धृतराष्ट्र बोले, "तो करो द्यूत-सभा का आयोजन। मैं इसके बीच में नहीं पड़ूँगा।"

यह सुनकर दुर्योधन का चेहरा खिल गया। उसने प्रफुल्लित होकर अपने भाइयों और मित्रों को जाकर यह समाचार दिया तो वे सब हर्ष से नाच उठे।

दुर्योधन ने द्यूत-सभा का आयोजन किया और उसमें पाण्डवों को आमन्त्रित किया। वे सब हस्तिनापुर आये।

सभा आरम्भ हुई तो शकुनि महाराज युधिष्ठिर से बोले, "युधिष्ठिर ! आओ दो-दो हाथ हम लोगों के भी हो जायें।"

महाराज युधिष्ठिर बोले, "जुआ खेलना सब पापों की जड़ है। मैं जुआ नहीं खेल सकता।"

शकुनि बोला, "रहने दो युधिष्ठिर इन पाप-पुण्य की बातों को। राजसूय-यज्ञ करने के लिये आपने कितने ही निरपराध राजाओं का वध किया। क्या यह पाप नहीं था? यह साधारण-सा खेल पाप होगया आपकी दृष्टि में।"

शकुनि के सामने युधिष्ठिर को मौन रह जाना पड़ा। वह जुआ खेलने को उद्यत हो गये और जुए में अपना राज-पाट सब हार गये। अन्तिम दाव पर उन्होंने पांचाली को भी लगा दिया। उस दाव पर भी उनकी हार हुई।

खेल-खेल में इतना अनर्थ हो जायेगा इसकी उन्हें स्वप्न में भ
आशंका नहीं थी। वह इसे खेल-मात्र समझ रहे थे, परन्तु दुर्योधन
चाल चल रहा था। वह सब कुछ जीतकर शकुनि से बोला, 'मामा
देखते क्या हो? हमारा अपमान करने वाली पांचाली को खींचकर
सभा में ले आओ और उसे नग्न करके हमारी जंघा पर बिठा दो।"

दुर्योधन के वचन सुन कर सभा में सन्नाटा छा गया। शकुनि राज-
महल से पांचाली को लाने के लिए चला तो भीम के नेत्र अंगारे के
समान जल उठे। वह क्रोधित होकर बोले, "दुर्योधन! होश में आकर
बातें कर। पांचाली की ओर किसी ने कुदृष्टि से देखा तो सभा में
विनाश के बादल मँडरा उठेंगे।"

भीम का गर्जन सुनकर दुर्योधन मुस्करा कर बोला, "धर्मराज
युधिष्ठिर के छोटे भाई भीम! तुम्हें विदित होना चाहिये कि तुम इस
समय हमारे दास हो। तुम्हारी स्वाधीनता पर भी हम विजय प्राप्त
कर चुके हैं।"

भीम दुर्योधन की बात सुनकर आग-बबूला हो उठा। वह क्रोधपूर्ण
वाणी में बोला, "दुष्ट दुर्योधन! जिस जंघा पर तूने पांचाली को
बिठाने की बात की है उसे भीम अपनी गदा से तोड़ कर उसका रक्त-
ान करेगा।"

परिस्थिति को समझकर अर्जुन ने भीम को शान्त किया, परन्तु
ाला उनके भी हृदय में बहुत भयंकर जल रही थी।

शकुनि राज-महल में पहुँचा और उसने पांचाली को सभा में चलने
लिये कहा। पांचाली इस वृत्तांत को सुनकर भयभीत हो उठी। वह
धारण करके बोली, "मामा! क्या सचमुच कौरवों के विनाश
मय निकट आ गया है? क्या तुम्हें संसार में रहना नहीं है जो
कार के नीच कामों पर उतर आये हो? इस समय मैं रजस्वला
दि मैं इस दशा में न होती तो निश्चय ही तुम्हारे साथ चलती।

ऐसी दशा मे मैं कैसे चल सकती हूँ ?"

जब शकुनि ने देखा कि यह चलने को उद्यत नही थी तो उसने बल प्रयोग करने का निश्चय किया। पाचाली ने भयातुर होकर गांधारी के महल की ओर भागना चाहा परन्तु शकुनि ने उसे पकड़ लिया। पांचाली रोई, चिल्लाई, परन्तु वहाँ उनकी करुण-पुकार को कोई सुनने वाला नही था।

शकुनि ने पाचाली के केश पकड़ लिये और उन्हें राजसभा की ओर घसीटने लगा। वह उन्हे इसी प्रकार घसीटता हुआ, राजसभा में लेगया। पाचाली ने सभा में पहुँच कर वहाँ उपस्थित वीरों को ललकारा, पाँचों पाण्डवों की वीरता को ललकारा, कुरु-वंश के गौरव को ललकारा, परन्तु उसने देखा वहाँ का समस्त वायुमण्डल शान्त था। पांचाली की दशा पर किसी के भुजादण्ड नही फड़के, किसी मे मानवता जाग्रत नहीं हुई।

यह देखकर पांचाली का हृदय विदीर्ण हो उठा। उसके नेत्रों से अश्रुओं की धारा बह चली। आज भीम की गदा मौन थी, अर्जुन के गाण्डीव को जग लग गया था, नकुल, सहदेव की वीरता कायरता मे परिणित हो गई थी, महाराज युधिष्ठिर की धर्मपारायणता उन्हें छोड़ चुकी थी।

पाचाली के नेत्र भयभीत होकर आकाश की ओर उठ गये। उसे लगा कि भूमि धर्मविहीन होचुकी है। कौरवों का पाप भूमि को निगल जाना चाहता है।

पाचाली की यह दशा देखकर कौरव-पक्ष खिलखिलाकर हँस पड़ा। उनका अट्टहास वहाँ के वायुमण्डल में भर गया। पाण्डवों के मस्तक भूमि की दिशा में झुक गये। सभा में सन्नाटा छा गया।

शकुनि पांचाली को उसके केश पकड़ कर खींचता हुआ दुर्योधन के निकट ले गया।

भीष्म पितामह भावी उत्पात की आशंका से भयभीत हो उठे, परन्तु बोले एक शब्द नहीं।

महात्मा विदुर ने इसका विरोध किया, परन्तु मदोन्मत्त दुर्योधन ने उनकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह उपहासपूर्ण ध्वनि में हँस पड़ा।

दुर्योधन शकुनि से बोला, "देखते क्या हो मामा! हमारा अपमान करने वाली इस अभिमानिनी का अभिमान चूर्ण करो। इसे नंगी करके हमारी जंघा पर बिठा दो।"

दुश्शासन ने पाँचाली का चीर उतारने के लिये हाथ बढ़ाया तो पांचाली ने निराश दृष्टि से पाँचों पाण्डवों और भीष्म पितामह की ओर देखकर कहा, "एक स्त्री पर भरी सभा में यह अत्याचार होते देखकर कुरु-वंश के वीरों और विशेष रूप से पितामह को मौन देख कर मैं सोचती हूँ कि यह वंश रसातल को चला जायेगा। इसके सामने न्याय के लिये गिड़गिड़ाना मैं अपना अपमान समझती हूँ।" यह कह कर उसने अपने नेत्र बन्द करके कहा, "भय्या कृष्ण! क्या तुम भी कुरु-वंश के साथ रसातल को चले गये।"

कृष्ण गुप्त वेश में सभा के मध्य बैठे यह सब देख रहे थे। अभी तक वह मौन थे, परन्तु ज्यों ही दुश्शासन ने पांचाली का चीर उतारने के लिये हाथ बढाया तो वह अपने स्थान से उठकर सभा के बीच में आगये। वह घन-गर्जन के समान गम्भीर वाणी में बोले, "दुर्योधन! नीचता की पराकाष्ठा हो चुकी। मैं देख रहा था कि तुम्हारे अन्दर मानवता जाग्रत होती है अथवा नहीं। परन्तु देख रहा हूँ कि तुम मानवीय धरातल से बहुत नीचे गिर चुके हो। तुम्हारी आत्मा मर चुकी है।

पांचाली की ओर किसी ने हाथ बढ़ाया या कुदृष्टि से देखा तो यहां अभी प्रलय के काले बादल मँडरा उठेंगे। पांचाली के सतीत्व का नहीं आज यहाँ कुरु-वंश का विनाश होगा।"

कृष्ण की बात सुनकर सभा भयभीत हो उठी। धृतराष्ट्र और भीष्म थर-थर कांपने लगे। दुर्योधन का मुख स्वेदपूर्ण हो गया। दुश्शासन अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ा।

कृष्ण उतनी ही गम्भीर वाणी में बोले, "अन्याय और अधर्म सीमा का उल्लंघन कर चुका है। दादा भीष्म और आचार्य द्रोण की आँखें इस अधर्म को देखती रहीं। महाराज युधिष्ठिर को द्रोपदी को दाव पर रखने का कोई अधिकार नहीं है और वह भी तब जब वह स्वय को भी हार चुके थे।"

कृष्ण की न्यायपूर्ण बात सुनकर सभा का वातावरण एक स्वर से उनके पक्ष में हो गया।

कृष्ण बोले, "पाचाली का चीर-हरण करनेके लिये अब वह व्यक्ति सामने आये जिसे अपने प्राणों का मोह न हो।"

स्थिति की गम्भीरता को समझकर धृतराष्ट्र सभा में आकर बोले, "यादव-कुल शिरोमणि ! बच्चों के खिलवाड पर इतने क्रुद्ध न हो। मेरे रहते क्या पाचाली का चीर-हरण क्या कभी सम्भव था ? मैं पाण्डवों को इनका राज्य वापस देता हूँ।"

धृतराष्ट्र ने परिस्थिति को सभाल लिया परन्तु इससे दुर्योधन के हृदय की द्वेषाग्नि और भड़क उठी। वह कृष्ण के सामने कुछ न कह सका, अन्दर ही अन्दर घुट कर रह गया।

स्थिति ठीककर कृष्ण अपनी राजधानी को लौट गये।

कृष्ण के चले जाने पर दुर्योधन ने फिर अपनी चाल खेली और ... ने युधिष्ठिर को फिर जुआ खेलने के लिये ललकारा। युधिष्ठिर अपनी पहली हार का बदला लेने के लिये फिर जुआ ... लगे। इस बार निश्चय हुआ कि हारने वाले पक्ष को बारह वर्ष वन जाना होगा और एक वर्ष गुप्त रहना होगा। यदि उस ... मे उनका पता चल गया तो उन्हें फिर बारह वर्ष के लिये

वन जाना होगा। युधिष्ठिर को जुए में शकुनि से फिर मात खानी प
और परिणाम स्वरूप पाण्डवों की वनवास के लिये प्रस्थान करन
पड़ा। पाण्डव अपना राज-पाट छोड़ कर वन को चले गये।

कौरवों की प्रसन्नता का पारावार न रहा। उनके कुल में आनन्द की लहर दौड़ गई। दुर्योधन की नीति-कुशलता पर उसके सब साथी तथा भाई मुग्ध हो उठे परन्तु प्रजा-जनों में शोक छा गया। उनकी आशा निराशा में परिणित हो गई।

यह समाचार जब खांडुवप्रस्थ पहुँचा तो वहां की जनता हताश हो उठी। उन्होंने को स्वयं अनाथ अनुभव किया। राज्य में शोक का वातावरण छा गया।

पाण्डव सुभद्रा, तथा पांचाली तापस-वेश धारण करके वन को चल पड़े। माता कुन्ती को पाण्डवों ने महात्मा विदुर के पास छोड़ दिया। उन्हें इस प्रकार वन जाते देख कर कौरव-पक्ष की प्रसन्नता का पारावार न रहा परन्तु प्रजा रो रही थी। प्रजा को लग रहा था कि अब राज्य मे अन्याय के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नही देगा।

कौरवों ने पाण्डवों का लाख उपहास किया और व्यग्य-बाण छोड़े, परन्तु पाण्डव मौन बने रहे। उनकी जबान पर एक शब्द भी उनके उत्तर में न आया। वे अपने मार्ग पर आगे बढ़ते चले जा रहे थे।

पाण्डवों के हृदय क्षोभ से भरे थे। पांचाली के अपमान को स्मरण करके उनके हृदयो मे ज्वाला धुधक रही थी। उनके नेत्र अगारों के समान दहक रहे थे, परन्तु अपने क्रोध को वे उस समय कालकूट के समान शिव बन कर पी गये थे।

महात्मा विदुर बहुत दूर तक पाण्डवों को छोड़ने के लिये गये। उनके साथ बहुत से पुर-वासी भी थे। अन्त मे विदीर्ण हृदय लेकर वे सब वापस लौट गये।

महात्मा विदुर ने वापस हस्तिनापुर लौटकर महाराज धृतराष्ट्र से भेंट की और सकरुण वाणी मे कहा, "महाराज ! यह जो कुछ हुआ, उचित नही हुआ। तेरह वर्ष पलक मारते निकल जायेंगे। जब ये लोग वापस लौटेंगे तो अपने अपमान का बदला लिये बिना नही रहेंगे। पारस्परिक कलह का यह बीज जो दुर्योधन ने बो दिया है इसका फल अच्छा नही होगा। दुर्योधन ने यह कार्य बहुत ही संकीर्ण दृष्टि से किया है।

मुझे दिखाई दे रहा हैं कि वह समय दूर नहीं है जब हस्तिनापुर एक विशाल श्मशान-भूमि में परिणित होगा और इस कुरु-वंश के प्रतापी वीरों की चितायें जलती दिखाई देंगी। पाण्डवों की यह वन-यात्रा कुरु-कुल के विनाश की पूर्व-सूचना है।

दुर्योधन की प्रवृत्ति यदि इसी प्रकार अधर्म की ओर रही तो यह एक दिन महाविनाश का कारण बनेगी। मैं दोनों परिवारों के समान शुभ चिंतक के नाते आपको चेतावनी दे रहा हूँ। आप समय रहते इस गम्भीर स्थिति को संभालें, मैं यही चाहता हूं।"

धृतराष्ट्र को विदुर की नीतिपूर्ण बात भली नहीं लगी। उन्हें उनकी बात में पाण्डवों के पक्षपात की बू आई। वह मुस्करा कर बोले, "महात्मा विदुर! तेरह वर्ष का लम्बा समय कुछ नहीं है। आप अभी से इतने चिंताग्रस्थ न हों। समय आने पर सब देख लिया जायेगा। इस समय इस विषय पर कोई चर्चा चलाने से कोई लाभ नहीं होगा।"

महात्मा विदुर को धृतराष्ट्र का यह उत्तर अपने बच्चों के मोह में लिप्त प्रतीत हुआ। वह चुपचाप वहाँ से उठ कर चले आये। उन्होंने बात को आगे बढ़ाना उचित नहीं समझा।

महात्मा विदुर के नेत्रों के सामने रण-चण्डी नृत्य कर रही थी। वह अपने विचारों को दबाकर मौन नहीं रह सके।

इसी विषय को लेकर महात्मा विदुर ने एक दिन धृतराष्ट्र की भरी सभा में भर्त्सना की। महाराज धृतराष्ट्र को उनपर क्रोध आ गया। वह बोले, "विदुर! तुम हमारे राज्य में रहते हो, तुम हमारा अन्न खाकर हमारे ही विरुद्ध बोलते हो। यह कृतघ्नता है। राजनीति में यह क्षम्य नहीं है। प्रातः काल होते ही तुम यहाँ से चले जाओ और वहीं जाकर रहो जहाँ पाण्डव गये हैं।"

महात्मा विदुर बोले, "मैं महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा का पा
करूँगा। चाटुकारिता करके आपको कुमार्ग की राह बताऊँ,
मुझसे नहीं होगा। मैं कल प्रात काल हस्तिनापुर को छोड़ दूँगा।"

महात्मा विदुर दूसरे दिन प्रात काल अपनी पत्नी और कुन्ती को
समझाकर काम्यक वन की ओर चल पड़े। पाण्डव उस समय वहीं थे।
कई दिन की यात्रा के पश्चात् उन्होंने पाण्डवों से जाकर भेंट की।

महात्मा विदुर का पाण्डवों ने पिता-तुल्य स्वागत किया। उन्हें
महाराज धृतराष्ट्र द्वारा उनकी भर्त्सना की सूचना प्राप्त कर हार्दिक
कष्ट हुआ। धर्मराज युधिष्ठिर बोले, "आप हमारे चाचा हैं। नीति
परागत होने के नाते आप हमारे गुरु तुल्य पूज्य हैं। आपकी सेवा कर
ने का सौभाग्य प्राप्त कर हम स्वय को धन्य समझते हैं। आज्ञा करें
तो चाची जी और माता जी को भी यहीं ले आयें।"

महात्मा विदुर बोले, "शीघ्रता न करो बेटा! मेरे गुप्तचर मुझे
यहीं पर आकर क्षण-क्षण की सूचना देंगे। समय आने पर उन्हें
भी बुला लिया जायेगा। पहले मैं देखना चाहता हूँ कि मेरे निकालने
का द्रोण और दादा भीष्म पर क्या प्रभाव पड़ता है?"

धृतराष्ट्र द्वारा महात्मा विदुर के हस्तिनापुर से निकाले जाने का
समाचार जब भीष्म और द्रोण के कानो मे पड़ा तो वे चिंतित हो
उठे। उन्हे धृतराष्ट्र की अदूरदर्शिता पर बहुत क्षोभ हुआ।

धृतराष्ट्र ने भी यह कार्य बच्चो के मोह और दुर्योधन की
कुमंत्रणा के फल स्वरूप कर तो दिया परन्तु बाद मे उन्हे भी बहुत खेद
हुआ। इतने बड़े नीतिज्ञ को शत्रु पक्ष मे भेज कर उन्हे लगा कि उन्हों
अपने को बहुत अशक्त कर लिया।

धृतराष्ट्र ने भयभीत हो कर अपने दूतों को बुलाया और आदेश
दिया, "महात्मा विदुर जहाँ भी हो उन्हे तुरन्त वापस ले आओ।
उनसे कहना कि आपके प्रति किये गये व्यवहार से महाराज

महात्मा विदुर बोले, "मैं महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा का पालन करूँगा। चाटुकारिता करके आपको कुमार्ग की राह बताऊँ, यह मुझसे नहीं होगा। मैं कल प्रातःकाल हस्तिनापुर को छोड़ दूँगा।"

महात्मा विदुर दूसरे दिन प्रातः काल अपनी पत्नी और कुन्ती को समझाकर काम्यक वन की ओर चल पड़े। पाण्डव उस समय वहीं थे। कई दिन की यात्रा के पश्चात् उन्होंने पाण्डवों से जाकर भेंट की।

महात्मा विदुर का पाण्डवों ने पिता-तुल्य स्वागत किया। उन्हें महाराज धृतराष्ट्र द्वारा उनकी भर्त्सना की सूचना प्राप्त कर हार्दिक कष्ट हुआ। धर्मराज युधिष्ठिर बोले, "आप हमारे चाचा हैं। नीति परागत होने के नाते आप हमारे गुरु तुल्य पूज्य हैं। आपकी सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त कर हम स्वयं को धन्य समझते हैं। आज्ञा करें तो चाची जी और माता जी को भी यहीं ले आयें।"

महात्मा विदुर बोले, "शीघ्रता न करो बेटा! मेरे गुप्तचर मुझे यहीं पर आकर क्षण-क्षण की सूचना देंगें। समय आने पर उन्हें भी बुला लिया जायेगा। पहले मैं देखना चाहता हूँ कि मेरे निकालने का द्रोण और दादा भीष्म पर क्या प्रभाव पड़ता है?"

धृतराष्ट्र द्वारा महात्मा विदुर के हस्तिनापुर से निकाले जाने का समाचार जब भीष्म और द्रोण के कानों में पड़ा तो वे चिंतित हो उठे। उन्हें धृतराष्ट्र की अदूरदर्शिता पर बहुत क्षोभ हुआ।

धृतराष्ट्र ने भी यह कार्य बच्चों के मोह और दुर्योधन की कुमंत्रणा के फल स्वरूप कर तो दिया परन्तु बाद में उन्हें भी बहुत खेद हुआ। इतने बड़े नीतिज्ञ को शत्रु पक्ष में भेज कर उन्हें लगा कि उन्होंने अपने को बहुत अशक्त कर लिया।

धृतराष्ट्र ने भयभीत हो कर अपने दूतों को बुलाया और आदेश दिया, "महात्मा विदुर जहाँ भी हों उन्हें तुरन्त वापस ले आओ। उनसे कहना कि आपके प्रति किये गये व्यवहार से महाराज धृतराष्ट्र

बहुत लज्जित हैं। उन्होंने अन्न-जल ग्रहण करना बन्द कर दिया है। वह उस समय तक भोजन नहीं करेंगे जब तक आप हस्तिनापुर नहीं लौट आयेंगे।"

दूत महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा प्राप्त कर विदुरजी की खोज में चल दिये।

कौरवों के दूत जब पाण्डवों के आश्रम में पहुँचे तो देखा यहाँ यज्ञ हो रहा था। वहाँ का वायुमण्डल यज्ञ की सुगंधि से पूर्ण था और तुमुल ध्वनि से वेद-मंत्रों का उच्चारण हो रहा था।

आश्रम की शोभा देखकर कौरवों के दूत चकित रह गये। उन्होंने विदुर जी और पाण्डवों को प्रणाम करके महाराज धृतराष्ट्र का संदेश उन्हें दिया और उनके भोजन न करने की बात कही।

महात्मा विदुर ने परिस्थिति का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कर पाण्डवों को समझाया और हस्तिनापुर लौट गये।

धृतराष्ट्र को महात्मा विदुर के लौटने का समाचार मिला तो उन्होंने गले लगाकर उनसे भेंट की और अपने दुर्व्यवहार पर क्षमा-याचना की।

कृष्ण के पास जब कौरवों के इस कुचक्र का समाचार पहुँचा तो उनकी आत्मा खिन्न हो उठी। वह महाराज द्रुपद के पास पहुँचे कृष्ण को देखकर महाराज द्रुपद के खिन्न मन को सान्त्वना मिली। दूसरे दिन कृष्ण और धृष्टद्युम्न काम्यक वन में पाण्डवों के आश्रम में पहुँचे। उस समय पाण्डव वहाँ से प्रस्थान कर द्वैत वन की ओर चले गये थे।

कृष्ण और धृष्टद्युम्न ने द्वैत-वन में जाकर पाण्डवों को तापस वेश में देखा तो उनका हृदय विदीर्ण हो गया। कृष्ण और धृष्टद्युम्न को देख कर पाण्डव प्रेम से गद्-गद् हो गये। उन्होंने उनका सादर अभिवादन किया।

पांचाली को तपस्विनी के वेष मे देखकर धृष्टद्युम्न अधीर हो गया। पाचाली के भी धैर्य का बाँध टूट गया उनके नेत्र अश्रु-जल से पूर्ण हो गये।

कृष्ण पांचाली को व्याकुल देखकर बोले, "विह्वल न हो बहिन ! तुम्हारा पक्ष सत्य पर आधारित है। विजय अन्त में तुम्हारी ही होगी। वह दिन दूर नही है जब तुम पाण्डवों के पराक्रम को देखकर मुग्ध होगी। तुम्हारा राज-पाट कौरवो को लौटाना होगा और विजय-श्री तुम्हारी दासी बनकर तुम्हारे पास लौटेगी।"

कृष्ण की वाणी सुनकर पाचाली को धैर्य बँधा।

कृष्ण गम्भीर वाणी में बोले, "उस दिन द्यूत-सभा में धृतराष्ट्र तनिक चालबाज़ी खेल गये वरना उसी दिन मैं उन्हें आनन्द चखा देता। दुर्योधन मौन हो गया, वरना मैं उसकी सब मक्कारी निकाल देता। मुझे तुरन्त वापस न लौटना होता तो यह जो कुछ हुआ, कभी न हो पाता। तुम लोगों के वन से लौटने पर यदि दुर्योधन ने राज्य लौटाने में आनाकानी की तो रण-चण्डी का आह्वान करना होगा।

धृष्टद्युम्न ने पांचाली को अपने साथ चलने को कहा परन्तु वह उद्यत नहीं हुई। कृष्ण सुभद्रा को अपने साथ द्वारिका ले गये।

एक दिन पांचाली धर्मराज युधिष्ठिर से बोली, "महाराज ! आप लोग जो अत्याचार को सहन कर इस प्रकार वन वन भटक रहे हैं, यह पाप नहीं है ? क्या अधर्म को सहन करना धर्म है ?"

महाराज युधिष्ठिर ने उत्तर दिया, "देवि ! तुम्हारी बात तर्क-संगत है, परन्तु मैं धर्म बन्धन में आबद्ध हूँ। धर्म से विचलित होना कायरता है। धर्म-रक्षक की सर्वदा विजय होती है। तुम क्षमा की शक्ति को पहिचानो। क्षमा से बड़ी शक्ति अन्य किसी वस्तु में नहीं है।"

पांचाली मार्मिक वेदनापूर्ण स्वर में बोली, "तब तो विधाता ही

कुटिल है। वह सच्चे लोगों को कष्ट देता है और उन्हें भटकाने में उसे आनन्द आता है।"

युधिष्ठिर दुखी मन से बोले, "यह तुमने क्या कहा देवि ! तुम जो कुछ कहना चाहती हो मुझे कहो। विधाता को दोष न दो। विधाता कभी अन्याय नहीं करता। वह परम दयालु है। यह सब विपत्ति मेरे अपने कुकृत्यों का परिणाम है। मैं जुआ न खेलता तो यह स्थिति कभी पैदा न होती। पाप मैंने किया है और परिणाम तुम सब को सहन करना पड़ रहा है।"

पांचाली मौन हो गई।

भीम पांचाली की बात का समर्थन करके बोले. "महाराज ! भरत-खण्ड का राज्य आज तक कभी अन्यायियों के हाथों में नहीं रहा। आप आज्ञा करें तो मैं अकेला दुर्योधन को यमपुरी पहुंचाकर आपको राजसिंहासन पर बिठा सकता हूँ। जुए की हार कोई हार नहीं होती।'

धर्मराज युधिष्ठिर बोले, "वह समय दूर नहीं है भीम ? जब तुम्हें अपने पराक्रम का जौहर दिखाना होगा। इस समय हम वचन बद्ध हैं। मैं जानता हूँ कि हमारे वन से लौटने पर दुर्योधन हमें हमारा राज्य वापस नहीं देगा। तब हमें युद्ध करना होगा। वह धर्म युद्ध होगा और मैं तुम्हें सहर्ष आज्ञा दूंगा कि तुम दुर्योधन से उसकी नीचता का बदला लो। उसने पांचाली का जो अपमान किया है उसकी जलन मेरे दिल में भी कुछ नहीं है।"

ये बातें चल ही रही थी कि तभी उन्हें व्यासजी आते दिखई दिये व्यासजी के दर्शन से पाण्डव प्रसन्न हो गये। सभी ने व्यासजी का अभिनंदन किया।

जो बातें अभी तक चल रही थीं उन्हें व्यास जी के समक्ष रखा तो उन्होंने युधिष्ठिर के मत का समर्थन करते हुए कहा, "आप लोगों को वन में रह कर मौन तपस्वी बन जाना उचित नहीं है। आपको आज

से तेरह वर्ष पश्चात् भानेव ाली परिस्थिति के लिये सतर्क रहना चाहिए, भौर भर्जुन को दिव्यास्त्र प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

यह आदेश देकर व्यास जी वहां से विदा हो गये।

व्यास जी के गुरु-मंत्र को प्राप्त कर भर्जुन दिव्यास्त्र प्राप्त करने हिमालय की भोर चल दिये।

चलते समय पांचाली ने उनकी भारती उतारी भौर मस्तक पर तिलक करके भश्रुपूर्ण नेत्रों से सकरुण वाणी में कहा, "हृदय-वल्लभ वीर-शिरोमणि! जाइये भौर भपने व्रत में सफलता प्राप्त कीजिये। भारत-खण्ड भापकी वीरता का पराक्रम देखने के लिये भपने भाशापूर्ण नेत्रों को पसारे उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा है। विधाता भापकी मनोकामना पूर्ण करें।"

पांचाली से विदा लेकर भर्जुन भपने पुरोहित धौम्य जी तथा महाराज युधिष्ठिर के पास पहुँचे। उन दोनों ने भर्जुन को गले लगा-कर भपनी शुभकामनायें प्रकट की भौर भाशीर्वाद देकर विदा किया। उसके पश्चात् उन्होंने भपने भन्य भाइयों से विदा ली।

भर्जुन ने हिमालय-प्रदेश की यात्रा करते हुए वहां के सभी राज्यों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किये भौर भनेकों नवीन विद्याभों का ज्ञान प्राप्त किया। उनसे उन्होंने नये भस्त्र-शस्त्र भी प्राप्त किये।

युधिष्ठिर ने भी भपने भन्य तीन भाइयों भौर पुरोहित जी को साथ लेकर देशाटन किया भौर देश के विभिन्न राज्यों में जाकर भपने भनुकूल वातावरण बनाया। यात्रा करते-करते वे गंधमादन पर्वत पर पहुँच गये। यह पर्वत यक्षों का स्थान था।

पाण्डवों की यक्षों से मुठभेड़ हुई। भीम ने यक्षों को मार कर भगा दिया तो वे भपने राजकुमार के पास पहुँचे भौर उन्हें सारा वृतान्त सुनाया।

महाराज कुवेर को जब पाण्डवों के वहां भाने की सूचना मिली तो

उन्होंने सम्मानपूर्वक उनका स्वागत किया। अर्जुन ने उत्तर-पथ की यात्रा समाप्त कर गंधमादन पर्वत पर ही आकर अपने भाइयों से भेंट की।

अर्जुन ने नये-नये अस्त्र अपने भाइयों और पांचाली को दिखाये तथा नई विद्याओं का प्रदर्शन किया तो पाण्डव आनन्दविभोर हो उठे। उनके भाइयों ने उन्हें अपनी छाती से लगा लिया।

इसी पर्वत पर ही कृष्ण ने आकर पाण्डवों से भेंट की। कृष्ण से भेंट करके पाण्डवों को असीम शान्ति प्राप्त हुई। पाण्डवों ने उनका प्रेमाभिवादन किया। कृष्ण ने सबकी कुशल-क्षेम पूछी और उनके बच्चों तथा सुभद्रा का कुशल-क्षेम देकर उनके मन को सांत्वना प्रदान की।

अर्जुन ने कृष्ण को अपनी लम्बी यात्रा का वर्णन सुनाया तो उन्हें अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने अर्जुन के कार्य की मुक्त कंठ से सराहना की।

कृष्ण कुछ दिन वहां रहे और पाण्डवों से मंत्रणा कर द्वारिका पुरी लौट गये। कृष्ण के लौट जाने पर पाण्डव वहां से द्वैत-वन में चले गये।

उसी समय दुर्योधन ने अपने मित्रों तथा भाइयों के साथ पाण्डवों को चिढ़ाने व अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिये द्वैत-वन में जाने की बात सोची। वह महाराज धृतराष्ट्र के पास पहुंचा और द्वैत-वन में जाकर शिकार खेलने की आज्ञा मांगी।

धृतराष्ट्र बोले, "शिकार खेलना बुरी बात नहीं है दुर्योधन! परन्तु जहां पाण्डव निवास करते हैं वहां जाकर शिकार खेलना उचित नहीं है। तुम्हारे ठाट-बाट को देखकर उनके मन में जलन पैदा होगी। तुम्हारे ऐश्वर्य को देखकर उन्हें क्रोध आया तो व्यर्थ उत्पात खड़ा हो जायेगा। इस लिये तुम्हारा वहां जाना मैं उचित नहीं समझता।"

शकुनि बोला, "महाराज युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञा भंग कर हमसे

युद्ध नहीं करेंगे। उनके भाई उनकी इच्छा के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र नहीं उठा सकते। फिर वन इतना बड़ा है कि हमें उनके निकट जाने की आवश्यकता ही क्या है ? हम लोग उनसे पृथक रहकर शिकार खेलेंगे।"

धृतराष्ट्र ने आज्ञा दे दी। वे ठाट-बाट के साथ सुसज्जित हाथी-घोड़ों पर सवार होकर द्वैत-वन की ओर चल पड़े। वे अपने साथ अपनी रानियों को भी ले गये, जिससे उन्हें देखकर पांचाली का मन विदीर्ण हो उठे।

ये लोग उसी स्थान पर शिकार खेलने पहुँचे जहाँ पाण्डवों का आश्रम था और राज-मद में आज्ञा दी कि वहाँ पर एक नगर बसाया जाये।

दुर्योधन के शिल्पकारों ने कार्य आरम्भ कर दिया। वे वहाँ महल का निर्माण करने लगे।

गंधर्वराज चित्रथ भी उस समय उसी वन के सरोवर पर अपनी रानियों और दासियों के साथ ठहरे हुए थे। उनके अनुचरों ने दुर्योधन के अनुचरों को सरोवर पर जाने से रोक दिया।

दुर्योधन को यह समाचार मिला तो उसने क्रोधित होकर आज्ञा दी कि गंधर्वों को वन से निकाल कर बाहर भगा दिया जाये और बल पूर्वक सरोवर पर अधिकार कर लिया जाये।

दुर्योधन के सेवकों ने गंधर्वों को जाकर दुर्योधन की आज्ञा सुनाई तो वे कुपित होकर बोले, "तुम्हें पता है कि तुम किससे बातें कर रहे हो ? मूर्खो ! क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है कि गंधर्व दुष्ट दुर्योधन की आज्ञा का पालन नहीं करते ? भाग जाओ यहाँ से, नहीं तो तुम सबको बन्दी बना लिया जायेगा।"

दुर्योधन के सेवक वहाँ से भाग खड़े हुए और दुर्योधन से जाकर वे बातें और नमक-मिर्च लगाकर कहीं जो गन्धर्वों ने उनसे कही थीं।

दुर्योधन क्रोध में पागल हो उठा। उसने अपने सेवकों को गन्धर्वों

उन्होंने सम्मानपूर्वक उनका स्वागत किया। अर्जुन ने उत्तर-पथ की यात्रा समाप्त कर गंधमादन पर्वत पर ही आकर अपने भाइयों से भेंट की।

अर्जुन ने नये-नये अस्त्र अपने भाइयों और पांचाली को दिखाये तथा नई विद्याओं का प्रदर्शन किया तो पाण्ठव आनन्दविभोर हो उठे। उनके भाइयों ने उन्हें अपनी छाती से लगा लिया।

इसी पर्वत पर ही कृष्ण ने आकर पाण्डवों से भेंट की। कृष्ण से भेंट करके पाण्डवों को असीम शान्ति प्राप्त हुई। पाण्डवों ने उनका प्रेमाभिवादन किया। कृष्ण ने सबकी कुशल-क्षेम पूछी और उनके बच्चों तथा सुभद्रा का कुशल-क्षेम देकर उनके मन को सांत्वना प्रदान की।

अर्जुन ने कृष्ण को अपनी लम्बी यात्रा का वर्णन सुनाया तो उन्हें अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने अर्जुन के कार्य की मुक्त कंठ से सराहना की।

कृष्ण कुछ दिन वहां रहे और पाण्डवों से मंत्रणा कर द्वारिका पुरी लौट गये। कृष्ण के लौट जाने पर पाण्डव वहां से द्वैत-वन में चले गये।

उसी समय दुर्योधन ने अपने मित्रों तथा भाइयों के साथ पाण्डवों को चिढ़ाने व अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिये द्वैत-वन में जाने की बात सोची। वह महाराज धृतराष्ट्र के पास पंहुचा और द्वैत-वन में जाकर शिकार खेलने की आज्ञा माँगी।

धृतराष्ट्र बोले, "शिकार खेलना बुरी बात नहीं है दुर्योधन! परन्तु जहाँ पाण्डव निवास करते हैं वहां जाकर शिकार खेलना उचित नहीं है। तुम्हारे ठाट-बाट को देखकर उनके मन में जलन पैदा होगी। तुम्हारे ऐश्वर्य को देखकर उन्हें क्रोध आया तो व्यर्थ उत्पात खड़ा हो जायेगा। इस लिये तुम्हारा वहाँ जाना मैं उचित नहीं समझता।"

शकुनि बोला, "महाराज युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञा भंग कर हमसे

समस्त गंधर्वों का ठहरना कठिन हो गया।

जब यक्षराज को अर्जुन और भीम के युद्ध-क्षेत्र में उतर आने का समाचार मिला तो उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र भूमि पर रख दिये और कहा, "भाई अर्जुन ! आप किस से लड़ रहे हैं ? हमारी आपकी तो पुरानी मित्रता है। हमने आपका तो कोई अपराध नहीं किया।"

अर्जुन ने भी बाण-वर्षा बन्द कर गाण्डीव को कंधे पर रख लिया और दोनों मित्र आपस में गले मिले। अर्जुन बोले, "मित्र ! धर्मराज की आज्ञा पालन करने के लिये मुझे आना पड़ा। उन्होंने मुझे दुर्योधन का छुड़ाने की आज्ञा दी है। कृपया इस समय आप इसे छोड़ दें।"

युद्ध समाप्त हो जाने पर पाचाली भी वहाँ पहुँच गई। वह दुर्योधन की मुश्कें बंधी देखना चाहती थी और उसे जता देना चाहती थी कि भरी सभा में एक नारी को अपमानित करने वाले कुरु-कुल-कलंकी में कितनी शक्ति है।

भीम पाचाली को देखकर बोले, "तुम भी आ गई पाचाली ! चलो आज तुम ही इस नीच को मुक्त कराना। लज्जा तो इसमें लेश मात्र है नहीं परन्तु फिर भी देखते हैं लजाता है या नहीं।"

चित्रथ बोला, 'अर्जुन ! क्या तुम्हें दुर्योधन के यहाँ आने का उद्देश्य ज्ञात है ? तुम इसे छुड़ाने की बात कर रहे हो और यह अपना ऐश्वर्य दिखाकर तुम्हें चिढ़ाने के लिये आया था। इसी लिये इसने इस न में आखेट खेलने की धृतराष्ट्र से आज्ञा ली थी।"

चित्रथ की बात सुनकर भीम और पाचाली मुस्करा दिये। पाचाली ने चेहरे पर बनावटी गाम्भीर्य और नेत्रों में बनावटी जल भर कर ी, "महाबली भीम और प्रतापी धनजय ! क्या आप देख नहीं रहे क हमारे जेठ जी की यक्षराज ने कैसी दुर्दशा कर डाली है ? बेचारों ुश्कें बांध कर देखिये इन्हें कितना कष्ट दिया गया है। कुरु-कुल के ी युवराज की यह दुर्दशा देख कर क्या आप को दया नहीं आ रही ?

पर आक्रमण करने की आज्ञा दी, परन्तु गंधर्वों ने उन्हें हरा दिया। उनकी सहायता के लिये कर्ण वहाँ पहुंचा तो उसकी भी पराजय हुई। उसे भी वहाँ से पीठ दिखा कर भागना पड़ा। वह उनके सामने एक क्षण भी न ठहर सका।

दुर्योधन यह देखकर क्रोधावेष में स्वयं उनसे लड़ने के लिये उद्यत हुआ। उसने अपनी सेना लेकर उन पर धावा बोल दिया।

गंधर्वों ने वीरता पूर्वक युद्ध किया और दुर्योधन को वन्दी बना लिया। उसकी मुश्कें कस कर उसे अपने महाराज चित्रथ के पास ले गये और उनके चरणों पर ले जाकर पटक दिया।

दुर्योधन के सेवकों ने जब दुर्योधन की यह दशा देखी तो वे दौड़कर महाराज युधिष्ठिर की शरण में गये।

भीम को दुर्योधन की दुर्दशा का पता चला तो उनके आनन्द का पारावार न रहा। उन्होंने पांचाली से कहा, "पांचाली! चलो तुम्हें दुर्योधन की मुश्कें बंधी हुई दिखा लाऊँ। गंधर्वों ने उसे वन्दी बनाकर, चित्रथ के पैरों पर लेजाकर पटक दिया है और कर्ण, जिसकी वीरता पर उसे गर्व है, वह मैदान छोड़कर भाग गया।"

महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन के दूतों से यह समाचार प्राप्त कर अर्जुन और भीम से बोले, "भीम! यह हमारे कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, उपहास की बात नहीं। भविष्य में चाहे जो भी क्यों न हो, इस समय तुम जाओ और दुर्योधन को चित्रथ के वन्दी-गृह से मुक्त कराओ। राजनीति कहती है कि शत्रु को मुक्त कराना उसका सबसे बड़ा अपमान है। यदि शत्रु में तनिक भी लज्जा है तो उसे चुल्लू भर जल में डूब मरना चाहिए।"

भीम और अर्जुन को महाराज युधिष्ठिर का यह आदेश तनिक भी रुचिकर नहीं लगा, परन्तु उनके आदेश को वे टाल नहीं सकते थे। वे दोनों वीर गंधर्वों से युद्ध करने के लिये चल दिये। उनके प्रहारों के

समस्त गंधर्वों का ठहरना कठिन हो गया।

जब यक्षराज को अर्जुन और भीम के युद्ध-क्षेत्र में उतर आने का समाचार मिला तो उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र भूमि पर रख दिये और कहा, "भाई अर्जुन ! आप किस से लड़ रहे हैं ? हमारी आपकी तो पुरानी मित्रता है। हमने आपका तो कोई अपराध नहीं किया।"

अर्जुन ने भी बाण-वर्षा बन्द कर गाण्डीव को कंधे पर रख लिया और दोनों मित्र आपस में गले मिले। अर्जुन बोले, "मित्र ! धर्मराज की आज्ञा पालन करने के लिये मुझे आना पड़ा। उन्होंने मुझे दुर्योधन का छुड़ाने की आज्ञा दी है। कृपया इस समय आप इसे छोड़ दें।"

युद्ध समाप्त हो जाने पर पांचाली भी वहाँ पहुँच गई। वह दुर्योधन की मुश्कें बँधी देखना चाहती थी और उसे जता देना चाहती थी कि भरी सभा में एक नारी को अपमानित करने वाले कुरु-कुल-कलंकी में कितनी शक्ति है।

भीम पांचाली को देखकर बोले, "तुम भी आ गईं पांचाली ! चलो आज तुम ही इस नीच को मुक्त कराना। लज्जा तो इसमें लेश मात्र है नहीं परन्तु फिर भी देखते हैं लजाता है या नहीं।"

चित्रय बोला, "अर्जुन ! क्या तुम्हें दुर्योधन के यहाँ आने का उद्देश्य ज्ञात है ? तुम इसे छुड़ाने की बात कर रहे हो और यह अपना ऐश्वर्य दिखाकर तुम्हें चिढ़ाने के लिये आया था। इसी लिये इसने इस वन में आखेट खेलने की धृतराष्ट्र से आज्ञा ली थी।"

चित्रय की बात सुनकर भीम और पांचाली मुस्करा दिये। पांचाली अपने चेहरे पर बनावटी गाम्भीर्य और नेत्रों में बनावटी जल भर कर बोली, "महाबली भीम और प्रतापी धनंजय ! क्या आप देख नहीं रहे हैं कि हमारे जेठ जी की यक्षराज ने कैसी दुर्दशा कर डाली है ? बेचारों की मुश्कें बाँध कर देखिये इन्हें कितना कष्ट दिया गया है। कुरु-कुल के प्रतापी युवराज की यह दुर्दशा देख कर क्या आप को दया नहीं आ रही ?

इनपर दया कीजिये। इन्हें शीघ्र मुक्त कराइये। इनको यह दुर्दशा मुझसे देखी नहीं जा रही।"

पांचाली की व्यंग्य और उपहासपूर्ण बात सुनकर भी निर्लज्ज दुर्योधन को लज्जा न आई। उसके हृदय में जलने वाली द्वेषाग्नि में और घृताहूति पड़ गई।

यक्षराज चित्रथ बोले, "कुमार्गी दुर्योधन! सुने तूने देवि पांचाली के शब्द। यह वही देवि है जिनके केशों से पकड़वाकर तूने घसीटते हुए द्यूत-सभा में लाने की आज्ञा दी थी। इन्हें तूने दुश्शासन से नग्न करके अपनी जंघा पर बिठाने को कहा था। पापी, इस देवि की कुल-मर्यादा को देख और अपने कृत्यों पर दृष्टि डाल। यदि तेरे अन्दर लेप मात्र भी लज्जा है तो इस देवि के चरण धोकर पी।

तुझे आतो जिस सम्पादक पर गर्व है वह सम्पादा इस देवि के समक्ष तुच्छ है। तेरे दुष्ट कार्य का बदला महाबली भीम को लेना शेष है। इनकी प्रतिज्ञा भंग न हो इसी लिये तुझे मुक्त किया जाता है, वरना यहाँ से तेरी मुक्ति सम्भव नहीं थी।"

यक्षराज चित्रथ, अर्जुन, भीम और पांचाली के साथ ले दुर्योधन को ठेलते हुए धर्मराज युधिष्ठिर के समक्ष ले गये और उनके चरनों में उसे पटक कर बोले, "धर्मराज! यह दुष्ट आपके समक्ष है। आप इसे छोड़ें या दण्ड दें।"

धर्मराज युधिष्ठिर बोले, "भाई चित्रथ! आपने हम पर जो उपकार किया है उसके लिये हम आपके हृदय से कृतज्ञ हैं। आप ने दुर्योधन को मुक्त करके कुरु-वंश को कलंकित होने से बचा लिया।"

यक्षराज दुर्योधन को मुक्त करके वहाँ से चल गये तो पांचाली बोलीं, "जेठ जी! अपनी शक्ति को देखकर किसी से युद्ध करना चाहिये। यह सौभाग्य की बात रही कि हम लोग यहाँ आ पहुँचे वरना कौन जाने आज आपकी क्या दुर्दशा होती? हम लोग हर समय

ग्रौर हर स्थान पर ग्रापकी रक्षा के लिये नही पहुच सकते ।"

दुर्योधन सिर झुकाये हुए ग्रपने शिविर को चला गया । पाण्डवों को ग्रपना ऐश्वर्य दिखाने का उसका सब उत्साह भंग होगया । ग्रात्मग्लानि से उसका हृदय विदीर्ण हुग्रा जारहा था । पाचाली के दयावरण में लिपटे हुए व्यंग्य-वाणों ने उसके हृदय को छलनी बना दिया था । उसे ग्रपनी पराजय पर रह-रहकर पश्चाताप हो रहा था । ग्राज उसके सामने से उसकी ग्रपनी तथा कर्ण की वीरता का ग्रावरण फट चुका था । उसका हृदय भयभीत हो उठा था । वह ग्रब ग्रपना यह मुँह लेकर हस्तिनापुर मे प्रवेश करने योग्य नही रहा था ।

दुर्योधन ने ग्रपने शिविर में जाकर ग्रपने ग्रंगो पर भभूत रमाली ग्रौर बोला, "दुश्शासन ! तुम जाकर राज्य-भार सम्भालो । मै तुम्हे युवराज बनाता हूँ । मैं यही भूखा रहकर प्राण त्याग दूँगा । ग्रपना यह पराजित मुख लेकर मैं वापस नही जा सकता ।"

दुर्योधन की निरुत्साहपूर्ण बातें सुनकर कौरव ग्रधीर हो उठे । दुश्शासन बोला, "भय्या ! ग्राज की इस तनिक सी घटना से ग्राप इतने ग्रधीर हो उठे । क्या ग्रापके ऊपर पाण्डवो का ग्रातंक छागया है ? हमारे साथ कृप, द्रोण, कर्ण, भीष्म, शकुनि ग्रौर विदुर जैसे महारथी हैं । ये पाँच पाण्डव क्या उनके सामने ठहर सकेंगे ? हमारी पाण्डवो पर निश्चित रूप से विजय होगी ।"

कर्ण बोला, 'भाई दुर्योधन ! ग्राप ग्रधीर न हो । मेरा रथ टूट-गया था ग्रौर सेना भाग खड़ी हुई थी । ग्रकेला रह जाने के कारण मुझे भी भागना पड़ा, नही तो ग्राज सब यक्षो को यमपुरी पहुँचा देता ।

पाण्डवो ने तुम्हें ग्रपमानित कराने के लिये ही ग्राज यहाँ यक्षराज चित्रण को बुलाया था । हमें ग्रपने इस ग्रपमान का इनसे बदला लेना होगा । हम ग्रपने इस ग्रपमान को कभी नही भूल सकते ।"

पाण्डवों से बदला लेने की उत्कट इच्छा ने दुर्योधन के हृदय मे फिर ग्राशा ने सचार किया ग्रौर वह हस्तिनापुर लौट गया ।

२

महात्मा विदुर को दुर्योधन की द्वैत-वन-यात्रा का समाचार प्राप्त कर हार्दिक खेद हुआ। उसके दुष्टतापूर्ण आचरणों से उनका मन खिन्न हो चुका था।

अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करने के लिये दुर्योधन के द्वैत-वन में जाने को महात्मा विदुर ने नीचता की पराकाष्ठा समझा। उन्हें उनके दूतों ने वहाँ का समाचार लाकर दिया। जब उन्हें यह सूचना मिली कि यक्षराज चित्रथ ने दुर्योधन को वन्दी बना लिया था और महाराज युधिष्ठिर ने उसकी प्राण-रक्षा की, तो उन्होंने पाण्डवों के इस विशेष प्रतिष्ठापूर्ण कार्य की प्रशंसा की। वह मुक्त कंठ से पाण्डवों की प्रशंसा करके दादा भीष्म से वोले, "पितामह! देखी आपने दुर्योधन और कर्ण की नीचता। ये लोग पाण्डवों के सामने अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन करके उन्हें चिढ़ाने के लिये द्वैत-वन में आखेट खेलने गये। मतिमन्द धृतराष्ट्र ने भी इन्हें नहीं रोका।"

भीष्म आश्चर्यचकित होकर वोले, "द्वैत-वन में! द्वैत-वन में जाने की इन्हें धृतराष्ट्र ने आज्ञा क्यों दी? ज्ञात होता है धृतराष्ट्र अपने वच्चों के मोह में फंसकर निपट अन्धा होगया है। इसे दैहिक नेत्र तो विधाता ने ही नहीं दिये थे। अपने अन्तर्चक्षुओं को इसने स्वयं वन्द कर लिया।" भीष्म का हृदय ग्लानि से भर उठा। उन्होंने दुर्योधन के इस द्वेषपूर्ण कार्य की निन्दा की।

महात्मा विदुर वोले, "ये लोग द्वैत-वन में पहुँचे तो इनका यक्षराज चित्रथ से युद्ध छिड़ गया। जहाँ सरोवर पर उनकी स्त्रियाँ स्नान कर रही थीं,ये निर्लज्ज वहाँ जा पहुँचे। उन्होंने इन्हें वहाँ से मार कर भगा दिया। यक्षों ने इन्हें वुरी तरह पराजित किया। कर्ण मैदान से भाग

खड़ा हुआ।"

भीष्म मुस्कराकर बोले, "यह बहुत अच्छा हुआ विदुर ! कर्ण की वीरता की कलई खुल गई। अब दुर्योधन को उसकी वीरता पर गर्व करने का अवसर नहीं रहेगा। उसके बाहुबल के भरोसे यह कोई बड़ा उत्पात खड़ा नहीं कर सकेगा।"

"केवल इतना ही नहीं हुआ पितामह ! कर्ण के भाग आने पर दुर्योधन ने स्वयं यक्षों पर आक्रमण। किया यक्षों ने उसे परास्त कर उसकी मुश्कें बांधली और यक्षराज के चरणों पर लेजाकर पटक दिया। इसकी सब बहादुरी खाक में मिल गई।"

यह सुनकर भीष्म भयभीत हो उठे। उन्हें यक्षराज पर क्रोध आया। वह आवेशपूर्ण स्वर में बोले, "इस नीच ने कुरु-कुल को कलंकित कर दिया। जो अपमान कुरु-कुल ने आज तक कभी सहन नहीं किया, वह आज सहन करना पड़ा।" फिर प्रश्नवाचक दृष्टि से महात्मा विदुर की ओर देख कर पूछा, "तो क्या दुर्योधन अभी भी यक्षराज के बन्दी-गृह में पड़ा है ? क्या उसकी रक्षा के लिये मुझे जाना होगा ?"

महात्मा विदुर बोले, "नहीं पितामह ! युधिष्ठिर को दुर्योधन के बन्दी होने की सूचना मिली तो उसने अर्जुन और भीम को उसकी रक्षा के लिये भेजा। अर्जुन और भीम ने यक्ष की सेना को परास्त कर दुर्योधन को लेजाकर युधिष्ठिर के चरणों में पटक दिया।"

यह समाचार प्राप्त कर भीष्म गद्‌गद् हो उठे। वह मुक्त कण्ठ से बोले, "विदुर ! पाण्डवों के आचरण प्रशंसनीय हैं। उनके कृत्यों को सुनकर हृदय गर्व से फूल उठता है। वे लोग कुल-मर्यादा के रक्षक हैं।"

तभी उन्हें दुर्योधन अपने मित्रों और भाइयों के साथ आता दिखाई दिया। दुर्योधन की सूरत देखकर भीष्म बोले, "विदुर इस कुल-कलंकी दुर्योधन ने कुरु-कुल में जन्म न लिया होता तो अच्छा था। जिस कुल

की मर्यादा मैंने अपना जीवन देकर सींचा, उसका यह ध्वंस करने पर उतारू है। इसकी सूरत आँखों के सामने आती है तो हृदय अथाह पीड़ा से भर उठता है। मेरे नेत्रों के सामने महाकाल के काले बादल मँडराते दिखाई देने लगते हैं। लगता है जैसे विनाश मेरे सामने खड़ा हैं।

अपने पूर्वजों के त्याग और बलिदानों पर मेरी दृष्टि जाती है तो हृदय गर्व से फूल उठता है। जब मैं इस चाण्डाल की सूरत देखता हूँ तो लगता है कि इस वंश का गौरव अपने अन्तिम श्वास गिन रहा है। सच जानो विदुर ! इस नीच की सूरत देखने को मन नहीं होता। परन्तु क्या करूँ...।"

महात्मा विदुर गम्भीर वाणी में बोले, "आपका अनुमान ठीक ही है पितामह ! युद्ध के काले बादल आकाश पर मँडरा रहे हैं। पाण्डवों के बनवास के बारह हर्ष व्यतीत हो चुके हैं। अब अज्ञातवास का एक वर्ष शेष है। वह भी पलक मारते समाप्त हो जायेगा।

इधर मैं देख रहा हूँ कि दुर्योधन बेईमानी पर उतारू है। यह पाण्डवों को उनका आधा राज्य लौटाने के लिये उद्यत नहीं है। आप स्वयं विचारलें कि इसका परिणाम क्या होने वाला है।"

"परिणाम वही होगा विदुर ! जो तुम सोच रहे हो, जो मैं सोच रहा हूँ। कुरु-कुल का विनाश होगा और कुरु-कुल की भयंकर ज्वाला में देश-देशान्तर के वीर जलकर भस्म हो जायेंगे। मानव-संस्कृति का घोर विनाश-काल सामने दिखाई दे रहा है। कुछ नहीं बचेगा विदुर ! सर्वनाश की काली छाया भू-मण्डल पर छाजायेगी।" भीष्म गम्भीरता-पूर्वक बोले।

"यही होगा पितामह ! इसके अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दे रहा। दुर्योधन के चारों ओर जो मन्दमति परामर्शदाता एकत्रित हैं, ये यही कराकर दम न लेंगे। कुरु-वंश ने एक लम्बे काल तक परिश्रम

करके जो निर्माण किया है यह ध्वस्त हो जायेगा । कुछ नहीं बचेगा पितामह ! कुछ नहीं बचेगा । ।" गम्भीरतापूर्वक महात्मा विदुर बोले ।

कुरु-कुल के इन दो महान् कर्णधरों के हृदय संताप से विदग्ध हो उठे । कुरु-कुल के विनाश की काली छाया को अपने नेत्रों के सामने नृत्य करती देख कर दोनों के नेत्र सजल हो गये थे ।

उस दिन भरी सभा में भीष्म पितामह ने दुर्योधन से कहा, "दुर्योधन ! तुमने द्वैत-वन में जाकर कुरु-कुल को कलंकित किया । युधिष्ठिर वहाँ न होते तो तुमने कुरु-कुल गौरव को मर्यादा के लिये नष्ट कर दिया होता । परन्तु अच्छा यही हुआ कि तुम्हें अपने मित्र कर्ण की वीरता का ज्ञान हो गया । यक्ष-सेना के समक्ष पीठ दिखाकर भाग आने वाले कर्ण पर आज से तुम्हें गर्व करना छोड़ देना चाहिये । यदि मेरा कहा मानो तो अपने पाण्डव भाईयों के साथ विशुद्ध हृदय से मेल कर लो और दोनों आधा-आधा राज बाँट कर सुख-चैन से राज करो । कुरु-कुल की प्रतिष्ठा पारस्परिक कलह में नहीं, पारस्परिक प्रेम में है ।"

भीष्म की बात सुनकर दुर्योधन को उसमें पाण्डवों के हित की बू आई । उसने अश्रद्धा के साथ पितामह भीष्म की ओर देखा और सभा से उठ कर चला गया । उसके पीछे-पीछे कर्ण, शकुनि और दुःशासन भी चले गये ।

भीष्म महाराज धृतराष्ट्र से बोले "धृतराष्ट्र ! अपने हृदय चक्षुओं को खोलो । बेटों के मोह में अंधा न बन । क्या आखेट के लिये एक द्वैत-वन ही था जहाँ जाने की तुमने दुर्योधन को आज्ञा दी ?"

धृतराष्ट्र लज्जित होकर बोले, "मैंने मना किया था इन लोगों को द्वैत-वन में जाने के लिये । परन्तु जब इन्होंने वचन दिया कि पाण्डवों के साथ कोई उत्पात नहीं करेंगे और दूसरी दिशा में जायेंगे तो मैंने आज्ञा दे दी ।"

कर्ण सभा-भवन से बाहर निकलकर बोला, 'दुर्योधन ! सुनी तुमने

दादा भीष्म की बातें ? कितनी छलपूर्ण थीं ? यह पाण्डवों को पता नहीं क्या समझते हैं ? यह अन्न आपका खाते हैं और गुण पाण्डवों के गाते हैं। यह मेरे और तुम्हारे अन्दर द्वेष पैदा करना जाहते हैं, जिससे तुम अशक्त हो जाओ और पाण्डव तुम्हें हरादें। मैं इनकी चालों को भली भाँति समझता हूँ।"

"क्यों मामा शकुनि ! आपका क्या विचार है दादा भीष्म के विषय में ?" गम्भीरतापूर्वक दुर्योधन ने पूछा।

शकुनि बोला, "कर्ण ठीक कह रहा है दुर्योधन ! तुम्हें इनकी चालों में आकर अपनी शक्ति का विघटन नहीं करना चाहिये। कर्ण जैसा वीर साथी तुम्हें संसार में खोजे नहीं मिलेगा।"

शकुनि के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर कर्ण गर्व से फूल उठा और सीना उभार कर बोला, "दुर्योधन ! मैं भीष्म को दिखा देना चाहता हूँ कि कर्ण क्या है ? तुम तैयारी करो। मैं दिग्विजय के लिए प्रस्थान करूंगा हूँ और सब राजाओं के मस्तक झुकाकर उनसे चौथ वसूल करूँगा। इससे जो धन प्राप्त होगा उससे तुम राजसूय-यज्ञ करना।"

कर्ण की यह वीरतापूर्ण बात सुनकर दुर्योधन बोला, "यह बात तुमने बहुत ठीक सोची कर्ण ! तुम दिग्विजय करके लौटोगे तो दादा भीष्म पर भी तुम्हारी वीरता की छाप पड़ेगी और फिर वह तुम्हें कायर नहीं कह सकेंगे।"

कर्ण दिग्विजय के लिए चल पड़ा। कर्ण जिस दिशा में भी गया, उसने कुरु-कुल की विजय-पताका फहराई। कोई राजा उसके समक्ष सिर न उठा सका। जिसने सिर उठाया, उसे पराजित होना पड़ा।

कर्ण दिग्विजय करके लौटा तो दुर्योधन ने उसकी पीठ ठोंक कर कहा, "प्रतापी कर्ण ! जिस कार्य को बड़े-बड़े महारथी नहीं कर सकते थे, वह तुमने करके दिखा दिया। अब दादा को तुम्हारा लोहा

माननी ही होगा।"

कर्ण के इस वीरतापूर्ण कार्य की माता गांधारी और धृतराष्ट्र ने मुक्त कण्ठ से सराहना की।

दुर्योधन ने राजसूय यज्ञ करने का निश्चय किया और ब्राह्मणों को बुलाया परन्तु ब्राह्मणों ने उन्हें राजसूय-यज्ञ की अनुमति नहीं दी। वे बोले, "महाराज! आपने पिता के जीवित रहते आप राजसूय-यज्ञ करने के अधिकारी नहीं हैं। फिर आपके कुल के महाराज युधिष्ठिर सफल राजसूय-यज्ञ कर चुके हैं। ऐसी दशा में आपको विष्णु-महायज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए।"

दुर्योधन ने विष्णु-महायज्ञ का अनुष्ठान किया। पाण्डवों के पास भी निमन्त्रण-पत्र भेजा गया, परन्तु उन्होने यह कह कर टाल दिया कि वे लोग वनवास की स्थिति में नगर में प्रवेश नहीं कर सकते।

दुर्योधन ने धूम-धाम के साथ यज्ञ सम्पन्न किया और ब्राह्मणों को दान दक्षिणा दी।

यज्ञ समाप्ति पर कर्ण दुर्योधन का अभिवादन करके बोला, "यह यज्ञ सम्पन्न हुआ दुर्योधन! परन्तु मेरे मन को प्रसन्नता तभी होगी जब तुम पाण्डवों पर विजय प्राप्त कर राजसूय-यज्ञ करोगे। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक मैं अर्जुन को युद्ध-भूमि में परास्त कर उसका वध नहीं करदूँगा तब तक मांस और मदिरा का सेवन नहीं करूंगा।"

कर्ण की प्रतिज्ञा को सुनकर दुर्योधन ने उसे छाती से लगा लिया और गद् गद् वाणी में बोला, "वीर कर्ण! इस यज्ञ की पूर्ति का श्रेय तुम्हीं को है। मुझे विशवस है कि राजसूय-यज्ञ की सफलता का श्रेय भी तुम्ही प्राप्त करोगे। तुम्हारी प्रतिज्ञा निश्चित रूप से सफल होगी। यूँ तो हमारे पक्ष में कृप, द्रोणा और भीष्म जैसे वीर हैं, परन्तुक मेरा विश्वास एक मात्र तुम्ही पर है।"

दुर्योधन के मुख से अपनी वीरता का प्रशंसा सुनकर कर्ण की छाती

फूलकर गर्व से चौड़ी होगई।

पाण्डवों को दुर्योधन के यज्ञ की सफलता का समाचार मिला तो भीम उत्तेजित होकर बोला, "यह यज्ञ बच्चों का खिलवाड़ मात्र है। वास्तविक यज्ञ तो होना अभी होना शेष है। वह यज्ञ समर-भूमि में होगा।"

अर्जुन उत्साहपूर्ण स्वर में बोले, "सुना है कर्ण ने युद्ध-भूमि में मुझे परास्त करके मेरा संहार करने का व्रत लिया है।" यह कह कर वह हँस दिये।

दूसरे दिन पाँचों भाई प्रातःकाल ही आखेट के लिए निकल गये।

पांचाली आश्रम में अकेली घूम रही थीं। पांचाली के रूप से वन-स्थली खिल रही थी। वह जिधर भी जाती थीं उधर के वेल-वितान पुष्पित हो उठते थे, पक्षी गण कलरव करके मधुर स्वर में राग अलापते थे। पांचाली उनके निकट जाकर उनकी डालियाँ पकड़ कर झूलने लगती थीं। पत्ते ताल देते थे और शीतल पवन संगीत स्वर को सम्पूर्ण वन में बिखरा देती थी।

पांचाली ने देखा उनके पालित मृगों के छौनों की कतार उनके सामने खड़ी थी। उन्होंने उन सब को कन्द-मूल-फल खिलाये और उनके साथ खेलती हुई आश्रम की झोंपड़ी के निकट आ गईं। यह वन पांचाली का साम्राज्य था।

दुर्योधन का बहनोई जयद्रथ अपनी विशाल सेना के साथ शाल्व देश को जा रहा था। वह आश्रम के निकट पहुँचा तो उसकी दृष्टि पांचाली पर पड़ी।

जयद्रथ पांचाली के रूप को देख कर ठगा-सा रह गया। उसने रथ रोक दिया और अपने दूत को उनके पास उनका परिचय प्राप्त करने के लिये भेजा।

जयद्रथ के दूत ने पांचाली के निकट जाकर पूछा, "सुन्दरी! आप

आप कन हैं ? वनदेवी हैं अथवा स्वर्ग से उतरी हुई कोई अप्सरा ? मैं सिंधुराज श्री जयद्रथ का दूत हूँ। वह सामने सरोवर के निकट रथ पर विराजते हैं। मुझे उन्होंने आपका परिचय प्राप्त करने के लिये भेजा है। आप अपना परिचय दें तो मैं उनकी जिज्ञासा शान्त करूं।"

पांचाली ने उत्तर दिया, "मेरा नाम पाचाली है। श्री जयद्रथ के लिये मेरा इतना ही परिचय पर्याप्त होगा। वह इस नाम से परिचित हैं। मेरे पति अर्जुन अपने भाईयों के साथ आखेट खेलने के लिये गये हुए हैं। श्री जयद्रथ से कहिए कि पतिदेव के लौटने पर उनका समुचित सत्कार किया जायेगा। तब तक वह सरोवर के तट पर विश्राम करें।"

दूत ने सिंधुराज जयद्रथ को जाकर पांचाली का परिचय दिया। जयद्रथ उनके रूप पर बुरी तरह आसक्त हो चुका था। वह वहाँ खड़ा न रह सका और आश्रम के निकट चला आया।

पाचाली ने जयद्रथ को आसन दिया और बोली, "सिंधुराज ! आसन पर विराजें। धृतराष्ट्र हमारे पूज्य हैं। उनके जामाता का समुचित सम्मान करना हमारा धर्म है। आप कंद-मूल-फलों का आहार करें तब तक पाण्डव भी आ जायेंगे।" यह कह कर उन्होंने एक कमल-पत्र पर कुछ कंद-मूल-फल रख कर उसके सामने कर दिये।

लोलुप जयद्रथ वहाँ कंद-मूल-फल खाने नही गया था। वह बोला "अपूर्व सुन्दरी ! मुझे तुम्हारे इन फलों की आवश्यकता नहीं है। मैं तुम्हारे रूप का पिपासू हो उठा हूँ। तुम व्यर्थ इन कायर पाण्डवों के पास रहकर अपने अनुपम रूप को नष्ट कर रही हो। मेरे साथ रथ पर बैठ कर चलो और मेरे राज्य की साम्राज्ञी बनो। संसार में मनुष्य सुख भोग करने के लिये आता है, व्यर्थ कष्ट सहन करने के लिये नहीं ?'

जयद्रथ की वासनापूर्ण बातें सुनकर पाचाली का रक्त उबाल खा गया। उनके नेत्र अंगारो के समान दहकने लगे। वह क्रुद्ध वाणी मे बोली, 'दुष्ट ! मेरी दृष्टि के सामने से दूर हो जा। मुझे आश्रम में

अकेली देख कर तेरा इतना साहस हुआ कि तूने इस प्रकार के शब्द उच्चारण किये ?"

पांचाली के क्रोधपूर्ण शब्दों का निर्लज्ज जयथ पर कोई प्रभाव न हुआ। उसने पांचाली का वस्त्र पकड़ कर उसे अपनी ओर खींचना चाहा तो पांचाली ने पास में पड़े एक पाषाण से जयद्रथ पर प्रहार किया। जयथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह फिर सँभल कर उठा तो पांचाली ने उस पर दूसरा प्रहार किया और वह फिर पीछे जा गिरा। वह हतप्रभ सा हो गया कि अब क्या करें।

तब तक जयथ के सैनिक वहाँ आ गये। उन्हें देख कर पांचाली भयभीत हो उठी। अब उनके पास उनसे बचने को कोई मार्ग न रहा था।

जयथ अपने सैनिकों से बोला, "इसे उठा कर मेरे रथ पर ले चलो।" सैनिकों ने झपटकर पांचाली को उठा लिया और जयथ के रथ पर ले गये और उन्हें रथ पर डाल दिया।

पांचाली आर्तनाद कर उठीं। वह ज़ोर-ज़ोर से पाण्डवों को पुकारने लगीं।

धौम्य जी ने पांचाली का आर्तनाद सुना तो वह दौड़कर घटना स्थल पर पहुँचे और क्रोधावेष में बोले, "कायर जयथ! तेरा इतना दुस्साहस! यदि अपने प्राणों की रक्षा चाहता है तो पांचाली को अपने रथ से नीचे उतार दे वरना समझ ले आज मृत्यु तेरे शीर्ष पर मँडरा उठी है। पाण्डव आ गये तो तेरे प्राणों की कोई रक्षा न कर सकेगा।"

जयद्रथ ने धौम्य जी की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह अपने सारथी से बोला, " रथ आगे बढ़ाओ।" वह पवन-वेग से अपने रथ को अपनी राजधानी की ओर ले चला।"

सारथी ने रथ हाँक दिया। पांचाली चिल्ला रही थीं। धौम्यजी

पागलों की तरह रथ के पीछे-पीछे दौड़ पड़े ।

रथ अभी कुछ ही दूर गया था कि पाण्डव आश्रम पर आ गये । आश्रम की एक वन-कन्या ने उनसे पांचाली के हरण की बात कही तो वे क्रोध में पागल हो उठे ।

अर्जुन ने गांडीव सँभाल देखा कि रथ दक्षिण पथ की ओर जा रहा था । उन्होंने रथ पर एक बाण संधान कर प्रहार किया । रथ खील-खील होकर बिखर गया । उनके दूसरे तीर ने रथ के दोनों घोड़ों को मृत्यु-लोक में पहुँचा दिया और तुरंत वह अपने भाई भीम को साथ ले कर उस दिशा में दौड़ पड़े । वे रथ के निकट पहुँचे तो देखा वहाँ जयद्रथ की विशाल सेना उनके सामने खड़ी थी ।

दोनों भाई शत्रु-सेना का संहार करते हुए जयद्रथ के निकट जा पहुँचे और भीम ने लपक कर उसके केश पकड़ लिये । अर्जुन के बाणों की तीव्र वर्षा के सामने जयद्रथ की सेना भाग खड़ी हुई । उन्हें भागते देखकर भीम बोले, "भय्या ! अब भागते हुए सैनिकों का संहार न करो । इस पापी को भय्या के पास ले चलो ।"

भीम जयद्रथ को घसीटते हुए महाराज युधिष्ठिर के पास ले गये । पांचाली उनके साथ आश्रम को लौट आई । उनका वदन क्रोध से थर-थर कांप रहा था ।

भीम क्रोध से उन्मत्त हो उठे थे । वह अपने बड़े भाई युधिष्ठिर से बोले, "भय्या ! आज्ञा करें तो इस पापी को यमपुरी पहुँचा दूँ । पांचाली का अपमान करने वाले की लोक-लीला समाप्त करने को मेरे भुजदण्ड फड़क रहे हैं । इस नीच का इतना साहस कि यह हमारा इस प्रकार अपमान करे ।"

स्थिति की गम्भीरता को समझकर युधिष्ठिर बोले, "भीम ! कार्य जयद्रथ ने सचमुच ऐसा ही किया है कि इसे प्राण-दण्ड मिलना चाहिये, परन्तु हमारे सामने बहिन दुःशला के सुहाग का भी प्रश्न है ।

अकेली देख कर तेरा इतना साहस हुआ कि तूने इस प्रकार के शब्द उच्चारण किये ?"

पांचाली के क्रोधपूर्ण शब्दों का निर्लज्ज जयथ पर कोई प्रभाव न हुआ। उसने पांचाली का वस्त्र पकड़ कर उसे अपनी ओर खींचना चाहा तो पांचाली ने पास में पड़े एक पाषाण से जयद्रथ पर प्रहार किया। जयथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह फिर संभल कर उठा तो पांचाली ने उस पर दूसरा प्रहार किया और वह फिर पीछे जा गिरा। वह हतप्रभ सा हो गया कि अब क्या करें।

तब तक जयथ के सैनिक वहाँ आ गये। उन्हें देख कर पांचाली भयभीत हो उठी। अब उनके पास उनसे बचने को कोई मार्ग न रहा था।

जयथ अपने सैनिकों से बोला, "इसे उठा कर मेरे रथ पर ले चलो।" सैनिकों ने झपटकर पांचाली को उठा लिया और जयथ के रथ पर ले गये और उन्हें रथ पर डाल दिया।

पांचाली आर्तनाद कर उठीं। वह ज़ोर-ज़ोर से पाण्डवों को पुकारने लगीं।

धौम्य जी ने पांचाली का आर्तनाद सुना तो वह दौड़कर घटना स्थल पर पहुँचे और क्रोधावेश में बोले, "कायर जयथ! तेरा इतना दुस्साहस! यदि अपने प्राणों की रक्षा चाहता है तो पांचाली को अपने रथ से नीचे उतार दे वरना समझ ले आज मृत्यु तेरे शीर्ष पर मँडरा उठी है। पाण्डव आ गये तो तेरे प्राणों की कोई रक्षा न कर सकेगा।"

जयद्रथ ने धौम्य जी की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह अपने सारथी से बोला, ". रथ आगे बढ़ाओ।" वह पवन-वेग से अपने रथ को अपनी राजधानी की ओर ले चल।"

सारथी ने रथ हांक दिया। पांचाली चिल्ला रही थीं। धौम्यजी

पागलों की तरह रथ के पीछे-पीछे दौड़ पड़े ।

रथ अभी कुछ ही दूर गया था कि पाण्डव आश्रम पर आ गये । आश्रम की एक वन-कन्या ने उनसे पांचाली के हरण की बात कही तो वे क्रोध से पागल हो उठे ।

अर्जुन ने गांडीव संभाल देखा कि रथ दक्षिण पथ की ओर जा रहा था । उन्होंने रथ पर एक बाण संधान कर प्रहार किया । रथ खील-खील होकर बिखर गया । उनके दूसरे तीर नें रथ के दोनों घोड़ों को मृत्यु-लोक में पहुँचा दिया और तुरंत वह अपने भाई भीम को साथ ले कर उस दिशा में दौड़ पड़े । वे रथ के निकट पहुँचे तो देखा वहाँ जयद्रथ की विशाल सेना उनके सामने खड़ी थी ।

दोनों भाई शत्रु-सेना का संहार करते हुए जयद्रथ के निकट जा पहुंचे और भीम ने लपक कर उसके केश पकड़ लिये । अर्जुन के बाणों की तीव्र वर्षा के सामने जयद्रथ की सेना भाग खड़ी हुई। उन्हें भागते देखकर भीम बोले, "भय्या ! अब भागते हुए सैनिकों का संहार न करो । इस पापी को भय्या के पास ले चलो ।"

भीम जयद्रथ को घसीटते हुए महाराज युधिष्ठिर के पास ले गये । पांचाली उनके साथ आश्रम को लौट आईं । उनका बदन क्रोध से थर-थर कांप रहा था ।

भीम क्रोध से उन्मत्त हो उठे थे । वह अपने बड़े भाई युधिष्ठिर से बोले, "भय्या ! आज्ञा करें तो इस पापी को यमपुरी पहुँचा दूँ । पांचाली का अपमान करने वाले की लोक-लीला समाप्त करने को मेरे भुजदण्ड फड़क रहे हैं । इस नीच का इतना साहस कि यह हमारा इस प्रकार अपमान करे ।"

स्थिति की गम्भीरता को समझकर युधिष्ठिर बोले, "भीम ! कार्य जयद्रथ ने सचमुच ऐसा ही किया है कि इसे प्राण-दण्ड मिलना चाहिये, परन्तु हमारे सामने बहिन दुःशला के सुहाग का भी प्रश्न है ।

अकेली देख कर तेरा इतना साहस हुआ कि तुने इस प्रकार के शब्द उच्चारण किये ?"

पांचाली के क्रोधपूर्ण शब्दों का निर्लज्ज जयथ पर कोई प्रभाव न हुआ। उसने पांचाली का वस्त्र पकड़ कर उसे अपनी ओर खींचना चाहा तो पांचाली ने पास में पड़े एक पाषाण से जयद्रथ पर प्रहार किया। जयथ पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह फिर संभल कर उठा तो पांचाली ने उस पर दूसरा प्रहार किया और वह फिर पीछे जा गिरा। वह हतप्रभ सा हो गया कि अब क्या करें।

तब तक जयथ के सैनिक वहाँ आ गये। उन्हें देख कर पांचाली भयभीत हो उठी। अब उनके पास उनसे बचने को कोई मार्ग न रहा था।

जयथ अपने सैनिकों से बोला, "इसे उठा कर मेरे रथ पर ले चलो।" सैनिकों ने झपटकर पांचाली को उठा लिया और जयथ के रथ पर ले गये और उन्हें रथ पर डाल दिया।

पांचाली आर्तनाद कर उठीं। वह जोर-जोर से पाण्डवों को पुकारने लगीं।

धौम्य जी ने पांचाली का आर्तनाद सुना तो वह दौड़कर घटना स्थल पर पहुँचे और क्रोधावेष में बोले, "कायर जयथ! तेरा इतना दुस्साहस ! यदि अपने प्राणों की रक्षा चाहता है तो पांचाली को अपने रथ से नीचे उतार दे वरना समझ ले आज मृत्यु तेरे शीर्ष पर मँडरा उठी है। पाण्डव आ गये तो तेरे प्राणों की कोई रक्षा न कर सकेगा।"

जयद्रथ ने धौम्य जी की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। वह अपने सारथी से बोला, ". रथ आगे बढ़ाओ।" वह पवन-वेग से अपने रथ को अपनी राजधानी की ओर ले चला।"

सारथी ने रथ हांक दिया। पांचाली चिल्ला रही थीं। धौम्यजी

पागलों की तरह रथ के पीछे-पीछे दौड़ पड़े ।

रथ अभी कुछ ही दूर गया था कि पाण्डव आश्रम पर आ गये। आश्रम की एक वन-कन्या ने उनसे पांचाली के हरण की बात कही तो वे क्रोध में पागल हो उठे।

अर्जुन ने गाडीव सँभाल देखा कि रथ दक्षिण पथ की ओर जा रहा था। उन्होंने रथ पर एक बाण संधान कर प्रहार किया। रथ खील-खील होकर बिखर गया। उनके दूसरे तीर ने रथ के दोनों घोड़ों को मृत्यु-लोक में पहुँचा दिया और तुरंत वह अपने भाई भीम को साथ ले कर उस दिशा में दौड़ पड़े। वे रथ के निकट पहुँचे तो देखा वहाँ जयद्रथ की विशाल सेना उनके सामने खडी थी।

दोनों भाई शत्रु-सेना का संहार करते हुए जयद्रथ के निकट जा पहुंचे और भीम ने लपक कर उसके केश पकड़ लिये। अर्जुन के बाणों की तीव्र वर्षा के सामने जयद्रथ की सेना भाग खड़ी हुई। उन्हें भागते देखकर भीम बोले, "भय्या ! अब भागते हुए सैनिकों का संहार न करो। इस पापी को भय्या के पास ले चलो।"

भीम जयद्रथ को घसीटते हुए महाराज युधिष्ठिर के पास ले गये। पांचाली उनके साथ आश्रम को लौट आईं। उनका वदन क्रोध से थर-थर काँप रहा था।

भीम क्रोध से उन्मत्त हो उठे थे। वह अपने बड़े भाई युधिष्ठिर से बोले, "भय्या ! आज्ञा करें तो इस पापी को यमपुरी पहुँचा दूं। पांचाली का अपमान करने वाले की लोक-लीला समाप्त करने को मेरे भुजदण्ड फड़क रहे हैं। इस नीच का इतना साहस कि यह हमारा इस प्रकार अपमान करे।"

स्थिति की गम्भीरता को समझकर युधिष्ठिर बोले, "भीम ! कार्य जयद्रथ ने सचमुच ऐसा ही किया है कि इसे प्राण-दण्ड मिलना चाहिये, परन्तु हमारे सामने बहिन दुःशला के सुहाग का भी प्रश्न है।

हम यह सहन नहीं कर सकते हम अपने ही हाथों उसे विधवा कर दें। इस समय इसे शिक्षा देकर छोड़ देना ही उचित है।"

पांचाली के हृदय में अपने अपमान की भीषण ज्वाला सुलग रही थी, परन्तु उन्होंने महाराज युधिष्ठिर की गम्भीर सलाह पर ध्यान देकर कहा, "मैं ननदोई जी का स्वागत कर रही थी। इन्हें आसन देकर मैंने पत्तल पर कन्द-मूल-फल रख कर इन्हें खाने को दिये थे, परन्तु इन्हें अपनी यह दुर्दशा करानी ही अभीष्ट थी। इन्होंने अपनी कुबुद्धि का परिचय दिया, परन्तु हम अपनी सभ्यता को हाथ से नहीं जाने देंगे। यह सानन्द अपने घर वापस जा सकते हैं। मैं धर्मराज के मत से सहमत हूं।"

जयद्रथ को बन्धन-मुक्त कर दिया गया। धर्मराज युधिष्ठिर बोले, "जयद्रथ! अपनी बुद्धि का सदुपयोग करो। भविष्य में कभी ऐसा दुस्साहस करने की चेष्टा न करना, वरना उसका गम्भीर परिणाम होगा।"

जयद्रथ ग्लानिपूर्ण हृदय लेकर सिर नीचा किये वहां से चल दिया, परन्तु उसके ऊपर पाण्डवों के सद्व्यवहार का कोई प्रभाव न हुआ। उसके दिल में पाण्डवों के प्रति द्वेष की ज्वाला और भी तीव्र वेग के साथ भड़क उठी। उसने अपने मन में यही कहा कि वह कभी अवसर मिलने पर अर्जुन से अपने अपमान का बदला लेगा। वह अपने अपमान पर कुढ़ता हुआ वहां से चला गया।

३

पाण्डवों के वनवास के बारह वर्ष समाप्त हो गये थे। अब केवल एक वर्ष अज्ञात-वास का शेष था। इसे निर्विघ्न समाप्त करना एक कठिन समस्या थी क्योंकि यदि इस बीच में कौरवों को उनका पता चल जाता तो उन्हें फिर बारह वर्ष के लिये वन जाना पड़ता।

दुर्योधन के गुप्तचर उनके चारों ओर बिछे हुए थे और वे उनकी गतिविधियों पर दृष्टि रखे हुए थे। वे जिधर भी जाते थे वे उसकी सूचना दुर्योधन के पास पहुँचा देते थे।

एक दिन रात्रि को पाण्डव धौम्यजी को अपने आगामी पड़ाव की सूचना देकर आश्रम से चल पड़े। किसी को कानों कान भी उनके प्रस्थान की सूचना न मिली। धौम्यजी के वहाँ रहने से दुर्योधन के दूत यही समझे रहे कि पाण्डव अभी यहीं हैं।

प्रातःकाल सब लोग सोकर उठे तो धौम्यजी ने आश्रमवासी ब्राह्मणों को द्वारिका जाने का परामर्श दिया और उन्हें विदा करके धौम्यजी ने पाण्डवों से उनके आगामी पड़ाव पर जाकर भेंट की।

रात्रि को सब ने मिलकर विचार किया कि उन्हें यह एक वर्ष कहाँ बिताना चाहिये। धौम्यजी बोले, "आपका मत्सय-देश के राजा विराट के यहाँ रहना उचित होगा, परन्तु यदि आप अपने इसी वेष में वहां गये तो रहस्य प्रकट हुए बिना न रहेगा। महाराज युधिष्ठिर चौपड़ खेलने में प्रवीण हैं। विराट को भी चौपड़ खेलने का बहुत शौक है। इसलिये इन्हें उनका मनोविनोद-कार्य करना चाहिये। यह अपना नाम कंक रख लें और इसी नाम से आप सब भी इन्हें पुकारें। भीम भोजन बनाने में दक्ष हैं। इन्हें उनकी भोजनशाला में स्थान मिल जायेगा। इन्हें आप लोग बल्लभ नाम से पुकारें। अर्जुन संगीत-विद्या में दक्ष हैं। यह संगीतज्ञ

हम यह सहन नहीं कर सकते हम अपने ही हाथों उसे विधवा कर दें। इस समय इसे शिक्षा देकर छोड़ देना ही उचित है।"

पांचाली के हृदय में अपने अपमान की भीषण ज्वाला सुलग रही थी, परन्तु उन्होंने महाराज युधिष्ठिर की गम्भीर सलाह पर ध्यान देकर कहा, "मैं ननदोई जी का स्वागत कर रही थी। इन्हें आसन देकर मैंने पत्तल पर कन्द-मूल-फल रख कर इन्हें खाने को दिये थे, परन्तु इन्हें अपनी यह दुर्दशा करानी ही अभीष्ट थी। इन्होंने अपनी कुबुद्धि का परिचय दिया, परन्तु हम अपनी सभ्यता को हाथ से नहीं जाने देंगे। यह सानन्द अपने घर वापस जा सकते हैं। मैं धर्मराज के मत से सहमत हूँ।"

जयद्रथ को बन्धन-मुक्त कर दिया गया। धर्मराज युधिष्ठिर बोले, "जयद्रथ! अपनी बुद्धि का सदुपयोग करो। भविष्य में कभी ऐसा दुस्साहस करने की चेष्टा न करना, वरना उसका गम्भीर परिणाम होगा।"

जयद्रथ ग्लानिपूर्ण हृदय लेकर सिर नीचा किये वहाँ से चल दिया, परन्तु उसके ऊपर पाण्डवों के सद्व्यवहार का कोई प्रभाव न हुआ। उसके दिल में पाण्डवों के प्रति द्वेष की ज्वाला और भी तीव्र वेग के साथ भड़क उठी। उसने अपने मन में यही कहा कि वह कभी अवसर मिलने पर अर्जुन से अपने अपमान का बदला लेगा। वह अपने अपमान पर कुढ़ता हुआ वहाँ से चला गया।

पाण्डवों के वनवास के बारह वर्ष समाप्त हो गये थे। अब केवल एक वर्ष अज्ञात-वास का शेष था। इसे निर्विघ्न समाप्त करना एक कठिन समस्या थी क्यों कि यदि इस बीच में कौरवों को उनका पता चल जाता तो उन्हें फिर बारह वर्ष के लिये वन जाना पड़ता।

दुर्योधन के गुप्तचर उनके चारों ओर बिछे हुए थे और वे उनकी गतिविधियों पर दृष्टि रखे हुए थे। वे जिधर भी जाते थे वे उसकी सूचना दुर्योधन के पास पहुँचा देते थे।

एक दिन रात्रि को पाण्डव धौम्यजी को अपने आगामी पड़ाव की सूचना देकर आश्रम से चल पड़े। किसी को कानों कान भी उनके प्रस्थान की सूचना न मिली। धौम्यजी के वहाँ रहने से दुर्योधन के दूत यही समझे रहे कि पाण्डव अभी यहीं हैं।

प्रातःकाल सब लोग सोकर उठे तो धौम्यजी ने आश्रमवासी ब्राह्मणों को द्वारिका जाने का परामर्श दिया और उन्हें विदा करके धौम्यजी ने पाण्डवों से उनके आगामी पड़ाव पर जाकर भेंट की।

रात्रि को सब ने मिलकर विचार किया कि उन्हें यह एक वर्ष कहाँ बिताना चाहिये। धौम्यजी बोले, "आपका मत्स्य-देश के राजा विराट के यहाँ रहना उचित होगा, परन्तु यदि आप अपने इसी वेष में वहां गये तो रहस्य प्रकट हुए बिना न रहेगा। महाराज युधिष्ठिर चौपड़ खेलने में प्रवीण हैं। विराट को भी चौपड़ खेलने का बहुत शौक है। इसलिये इन्हें उनका मनोविनोद-कार्य करना चाहिये। यह अपना नाम कंक रख लें और इसी नाम से आप सब भी इन्हें पुकारें। भीम भोजन बनाने में दक्ष हैं। इन्हें उनकी भोजनशाला में स्थान मिल जायेगा। इन्हें [illegible] [illegible] बल्लभ नाम से पुकारें। अर्जुन संगीत-विद्या में द[illegible]

बनकर उनके दरबार में रहें और आप लोग इन्हें वृहन्नला कहकर पुकारें। नकुल को ग्रन्थिक के नाम से उनकी अश्वशाला में नौकरी करनी चाहिये। सहदेव को तंत्रिपाल नाम से उनके यहाँ पशु-चिकित्सा का कार्य सम्भालना चाहिये। पांचाली को सौरिन्ध्री नाम से रानी के शृंगार का कार्य करना चाहिये।"

धौम्यजी की यह बात सब ने स्वीकार कर ली और वे मत्स्य-देश की ओर चल पड़े। उन्होंने अज्ञात-वास का एक वर्ष विराट-नगरी में ही व्यतीत करने का निश्चय किया।

कौरवों के दूतों को जब पाण्डवों के चले जाने का कोई समाचार न मिला तो वे निराश होकर हस्तिनापुर लौट गये। उन्होंने पाण्डवों के रात्रि में लापता होने का समाचार दुर्योधन को दिया तो वह क्रोध से पागल हो उठा। उसे अपने दूतों पर बहुत क्रोध आया, परन्तु अब क्रोध करना निरर्थक था? उसने तुरन्त अपने बहुत से दूत देश-विदेशों में पाण्डवों की खोज करने के लिये भेजे।

पाण्डवों ने अपने वेश बदल लिये और गुप्त वेश में मत्स्य-राज के अन्दर प्रवेश किया। जब राजधानी निकट आ गई तो अस्त्र-शस्त्रों को छिपाने की समस्या उनके सामने आई, क्यों कि यदि वे अस्त्र-शस्त्रों सुसज्जित नगर में प्रवेश करते तो उनका भेद खुल जाता।

अर्जुन बोले, "सामने पर्वत-शिखर के पास जो श्यमशान भूमि दिखाई देती है, उसी के किसी वृक्ष पर हमें अपने अस्त्र-शस्त्र छिपा देने चाहियें। हम लोग समय-बे-समय उनकी देख-भाल कर जाया करेंगे।

अर्जुन का यह मत सब ने स्वीकार कर लिया और एक वृक्षों के झुरमुट में वगंद के पेड़ की खरकोडल के अन्दर अस्त्र-शस्त्र छिपा कर रख दिये।

सर्व प्रथम युधिष्ठिर नें एक दीन ब्राह्मण का रूप धारण कर नगरी में प्रवेश किया। वह महाराज विराट की सभा में पहुँचे तो

राट ने उनका परिचय प्राप्त किया।

युधिष्ठिर बोले, "महाराज ! मेरा नाम कंक है। मुझे चौपड़ खेलने का शौक है। मैं युधिष्ठिर के साथ चौपड़ खेला करता था। इधर जब से वह वनवास को चले गये हैं तब से मेरा कोई ठिकाना नहीं रहा। मैंने सुना है कि आपको भी चौपड में बहुत रुचि है।"

महाराज विराट ने उन्हें आदरपूर्वक अपने पास बिठा कर कहा, "आज से आप हमारे सखा हुए कंक जी ! आप सम्मानपूर्वक हमारे यहाँ रहें और हमारे साथ चौपड़ खेला करें। आपको यहां कोई कष्ट न होगा।"

युधिष्ठिर के पश्चात् भीम ने नगरी में प्रवेश किया और महाराज विराट से भेंट की। महाराज ने उनका परिचय पूछा तो वह बोले, "महाराज ! मेरा नाम वल्लभ है। मैं पाक-विद्या मे प्रवीण हूँ। मैं पाण्डवों की पाकशाला का प्रधान अधिकारी था। मुझे मल्ल-विद्या का भी शौक है। अवसर पड़ने पर मैं आपको अपना कौशल दिखाऊँगा।"

महाराज विराट ने उन्हें अपनी पाकशाला का प्रधान अधिकार नियुक्त किया। उनके पुष्ट बदन को देख कर महाराज ने सोचा कि ऐसा बलवान व्यक्ति यदि राज्य में रहेगा तो कभी समय पड़ने पर काम आयेगा।

उनके पश्चात् पांचाली ने नगर में प्रवेश किया। पांचाली को महाराज ने अपनी रानी की सेवा मे भेज दिया।

फिर अर्जुन ने नगर मे प्रवेश किया और संगीतज्ञ के रूप अपना परिचय दिया। उन्हें भी महाराज विराट के दरबार में प्रति मिली। नकुल और सहदेव को भी उनके उपयुक्त कार्यों पर लिया गया।

पांचों पाण्डवों को उनकी इच्छा के अनुकूल कार्य मिल गया।

बनकर उनके दरबार में रहें और आप लोग इन्हें बृहन्नला कहकर पुकारें। नकुल को ग्रन्थिक के नाम से उनकी अश्वशाला में नौकरी करनी चाहिये। सहदेव को तंत्रिपाल नाम से उनके यहाँ पशु-चिकित्सा का कार्य सम्भालना चाहिये। पांचाली को सौरिन्ध्री नाम से रानी के शृंगार का कार्य करना चाहिये।"

धौम्यजी की यह बात सब ने स्वीकार कर ली और वे मत्स्य-देश की ओर चल पड़े। उन्होंने अज्ञात-वास का एक वर्ष विराट-नगरी में ही व्यतीत करने का निश्चय किया।

कौरवों के दूतों को जब पाण्डवों के चले जाने का कोई समाचार न मिला तो वे निराश होकर हस्तिनापुर लौट गये। उन्होंने पाण्डवों के रात्रि में लापता होने का समाचार दुर्योधन को दिया तो वह क्रोध से पागल हो उठा। उसे अपने दूतों पर बहुत क्रोध आया, परन्तु अब क्रोध करना निरर्थक था? उसने तुरन्त अपने बहुत से दूत देश-विदेशों में पाण्डवों की खोज करने के लिये भेजे।

पाण्डवों ने अपने वेश बदल लिये और गुप्त वेश में मत्स्य-राज के अन्दर प्रवेश किया। जब राजधानी निकट आ गई तो अस्त्र-शस्त्रों को छिपाने की समस्या उनके सामने आई, क्योंकि यदि वे अस्त्र-शस्त्रों सुसज्जित नगर में प्रवेश करते तो उनका भेद खुल जाता।

अर्जुन बोले, "सामने पर्वत-शिखर के पास जो श्यमशान भूमि दिखाई देती है, उसी के किसी वृक्ष पर हमें अपने अस्त्र-शस्त्र छिपा देने चाहियें। हम लोग समय-बे-समय उनकी देख-भाल कर जाया करेंगे।

अर्जुन का यह मत सब ने स्वीकार कर लिया और एक वृक्षों के झुरमुट में बर्गद के पेड़ की खरकोडल के अन्दर अस्त्र-शस्त्र छिपा कर रख दिये।

सर्व प्रथम युधिष्ठिर नें एक दीन ब्राह्मण का रूप धारण कर नगरी में प्रवेश किया। वह महाराज विराट की सभा में पहुँचे तो

विराट ने उनका परिचय प्राप्त किया।

युधिष्ठिर बोले, "महाराज ! मेरा नाम कंक है। मुझे चौपड़ खेलने का शौक है। मैं युधिष्ठिर के साथ चौपड़ खेला करता था। इधर जब से वह वनवास को चले गये हैं तब से मेरा कोई ठिकाना नहीं रहा। मैंने सुना है कि आपको भी चौपड़ में बहुत रुचि है।"

महाराज विराट ने उन्हें आदरपूर्वक अपने पास बिठा कर कहा, "आज से आप हमारे सखा हुए कंक जी ! आप सम्मानपूर्वक हमारे यहाँ रहें और हमारे साथ चौपड़ खेला करें। आपको यहां कोई कष्ट न होगा।"

युधिष्ठिर के पश्चात् भीम ने नगरी मे प्रवेश किया और महाराज विराट से भेंट की। महाराज ने उनका परिचय पूछा तो वह बोले, "महाराज ! मेरा नाम वल्लभ है। मे पाक-विद्या में प्रवीण हूँ। मैं पाण्डवों की पाकशाला का प्रधान अधिकारी था। मुझे मल्ल-विद्या का भी शौक है। अवसर पड़ने पर मै आपको अपना कौशल दिखाऊँगा।"

महाराज विराट ने उन्हें अपनी पाकशाला का प्रधान अधिकारी नियुक्त किया। उनके पुष्ट बदन को देख कर महाराज ने सोचा कि ऐसा बलवान व्यक्ति यदि राज्य मे रहेगा तो कभी समय पड़ने पर काम आयेगा।

उनके पश्चात् पांचाली ने नगर में प्रवेश किया। पांचाली को महाराज ने अपनी रानी की सेवा में भेज दिया।

फिर अर्जुन ने नगर में प्रवेश किया और संगीतज्ञ के रूप में अपना परिचय दिया। उन्हें भी महाराज विराट के दरबार में प्रतिष्ठा मिली। नकुल और सहदेव को भी उनके उपयुक्त कार्यों पर रख लिया गया।

पांचों पाण्डवों को उनकी इच्छा के अनुकूल कार्य मिल गया। पांचों

भाई तथा पांचाली समय-समय पर आपस में मिल कर अपने हर्ष-विशाद की बातें भी कर लेते थे। इस प्रकार रहते-रहते चार मास व्यतीत हो गये।

विराट-नगरी में एक मेला लगता था। मेले की तय्यारियाँ होने लगीं। उस मेले में बड़े-बड़े पहलवान आते थे और अपने पराक्रम दिखाकर महाराज से पुरस्कार प्राप्त करते थे।

उस वर्ष मेले में जीवमृत नामक एक विख्यात पहलवान आया था। वह अपने सामने किसी को कुछ नहीं समझता था। अखाड़े म उतर कर उसने सब पहलवानों को ललकारा और जो भी उससे लड़ने आया उसी को उसने हरा दिया। महाराज विराट को उस समय अपनी पाक-शाला के अधिकारी वल्लभ का ध्यान आया। उन्होंने उसे बुलाकर कहा, "वल्लभ ! जीवमृत पहलवान ने सब पहलवानों को पछाड़ दिया है। क्या तुम इससे कुश्ती कर सकते हो ?"

महाराज की बात सुनकर उपस्थित जन-समूह खिलखिलाकर हंस पड़ा। वल्लभ की दृष्टि उन पर गई तो वह उस हास्य को संवरण न कर सके और लंगोट कसकर अखाड़े में उतर गये। उन्होंने पहल ही दाव पर जीवमृत को चारोंखाने चित्त मारा। उसकी हड्डी-पसलियाँ ढीली पड़ गईं। उसमें उठ कर खड़ा होने की भी शक्ति न रही।

महाराज विराट ने खड़े होकर वल्लभ को अपनी छाती से लगा लिया। महाराज ने उसी दिन से वल्लभ का वेतन दुगना कर दिया।

समय धीरे-धीरे और आगे बढ़ गया। अब सात महीने व्यतीत हो चुके थे। एक दिन विराट के सेनापति कीचक की दृष्टि पांचाली पर पड़ गई। कीचक महाराज की पत्नी का भाई था। उसके अन्य सम्बन्धी भी राज्य में बड़े-बड़े पदों पर आरूढ़ थे। शासन की बागडोर उन्हीं के हाथों में थीं। महाराज विराट स्वयं भी कीचक की इच्छा के विरुद्ध

कुछ नहीं कर सकते थे। उसने अपनी शक्ति से महाराज विराट को अपना दास बना लिया था। मत्स्य-देश का उस समय वास्तविक राजा वही था। महाराज विराट उसकी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कर सकते थे।

कीचक ने एक दिन अपनी बहन महारानी सुदेष्णा से कहा, "बहन ! तुम्हारी यह परम सुन्दर दासी कौन है ? इसके रूप को देखकर मैं अधीर हो उठा हूं। मैं इसके साथ विवाह करना चाहता हूं। इस कार्य में तुम मेरी सहायता करो।"

महारानी का उत्तर प्राप्त किये बिना ही वह सीधा पांचाली के सामने जा पहुंचा और अपना प्रेम-प्रस्ताव उसके सामने रख दिया।

पांचाली संयम के साथ बोली, "सेनापति ! आपको यह सब शोभा नहीं देता। मैं छोटी जाति की स्त्री हूं। फिर मैं विवाहित हूं। मैं आपका प्रेम-प्रस्ताव स्वीकार करने के सर्वथा अयोग्य हूं।"

कीचक को पांचाली के इस उत्तर से संतोष न हुआ। वह बोला, "सुन्दरी ! रूप की कोई जाति नहीं होती। रूप बंधन-मुक्त होता है। रूप को जाति के बंधन में बांधना रूप का अपमान करना है। रही बात तुम्हारे विवाहित होने की, सो ऐसे व्यक्ति को तुम्हारा पति बनने का कोई अधिकार नहीं जो तुम सरीखी सुन्दरी से दासी कार्य कराये। उस पति का त्याग कर तुम मेरी हृदयेश्वरी बनो। मैं तुम्हें अपनी साम्राज्ञी बनाऊंगा। मैं तुम्हें अपने हृदय में स्थान दूंगा।"

कीचक की बातें सुनकर पांचाली का मुख क्रोध से लाल हो उठा। वह बोली, "पतिव्रता स्त्री के सामने उसके पति की निन्दा आपको नहीं करनी चाहिए सेनापति ! मेरे पति गुप्त रूप से हर समय मेरे साथ रहते हैं। आप व्यर्थ उनके क्रोध के भाजन न बनें। वह बहुत क्रोधी स्वभाव के हैं। आप उनसे व्यर्थ बैर न बढ़ायें।"

दासी के मुख से ये शब्द सुनकर सेनापति कीचक धैर्य खो बैठा।

वह अपनी बहन के पास जाकर बोला, "बहन ! मैं सौरिन्ध्री के बिना जीवित नहीं रह सकता। मैं इसे बल-प्रयोग से भी अपने वश में कर सकता हूँ, परन्तु उल-प्रयोग से प्राप्त स्त्री के हृदय पर अधिकार नहीं किया जा सकता। तुम इस कार्य में मेरी सहायता करो।"

महारानी बोलीं, "कीचक ! मैं तुम्हारे विचारों से सहमत नहीं हूं, परन्तु क्यों कि तुम मेरे भाई हो इसलिये एक उपाय बताती हूं। तुम अपने महल में भोज का आयोजन करो। मैं वहाँ से भोजन लाने के लिये सौरिन्ध्री को भेजूंगी। तब तुम इसे अपनी वाक-चातुरी से अपने वश में करने का प्रयास करना। यदि यह प्रसन्नतापूर्वक तय्यार हो गई तो मैं अनुमति दे दूंगी।"

निश्चित समय पर कीचक ने दावत का प्रबन्ध किया। महारानी ने सौरिन्ध्री से कहा, "सौरिन्ध्री ! मुझे बड़ी भूख लगी है। तुम भाई के महल से जाकर मेरा भोजन ले आओ।"

सौरिन्ध्री महारनी की बात सुनकर भयभीत हो उठी। वह बोलीं, "महारानी जी ! मुझसे आप अन्य जो सेवा चाहें ले लें, परन्तु एकांत में सेनापति जी के महल में जाने का आदेश न दें। वह मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहते हैं। मेरे वहां जाने पर अनर्थ होने की अशंका है।"

महारानी आश्वासन देकर बोलीं', "सौरिन्ध्री ! मेरे रहते तुम्हारा अपमान करने का साहस किसी में नहीं है। तुम निर्भय होकर वहाँ जाओ और मेरा भोजन ले आओ।"

पांचाली को विवश होकर वहाँ जाना पड़ा। कीचक उसकी प्रतीक्षा में बैठा था। पांचाली जैसे ही कीचक के महल में पहुंची तो उसने बल प्रयोग करना चाहा। पांचाली चिल्ला कर बोली, "सेनापति कीचक ! मेरे साथ बल-प्रयोग न करो। मेरे पति आ गये तो फिर तुम्हारी कोई रक्षा न कर सकेगा। बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा। मैं आपसे अपने सतीत्व की भिक्षा मांगा हूँ।"

कीचक अंधा हो गया था। उसने कहा, "सुन्दरी ! मैं तुम्हारे पति से भयभीत होने वाला नहीं हूँ। मैं तुम्हारी कृपा प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम्हारा एक संकेत मात्र तुम्हें दासी से रानी बना सकता है। समझ-दारी से काम लो सौरिन्ध्री ! मूर्खता न करो। ऐसा अवसर जीवन में बार-बार हाथ नहीं आता है।"

पाचाली का हृदय कीचक के शब्द सुनकर विदीर्ण हो उठा। कीचक ने उन्हें अपनी बाहुओं में आबद्ध करना चाहा तो उन्होंने उसे धक्का दे दिया। कीचक पलग पर गिर पड़ा और वह दरबार की दिशा में भाग खड़ी हुई।

कीचक भी पाचाली को भागते देखकर उसने पीछे-पीछे हो लिया। उसने दरबार में जाकर पाचाली के केश पकड़ लिये और उन पर लात घूँसों का प्रहार किया।

सौरिन्ध्री महाराज विराट के सामने रोकर करुण वाणी में बोली, 'महाराज ! क्या आपका न्याय यही है कि आपके दरबार में एक अबला पर इस प्रकार अत्याचार हो ?"

कीचक का विरोध करने का साहस विराट में भी नहीं था। वह बातें बनाकर बोले, "सौरिन्ध्री ! जब तक मुझे यह न ज्ञात हो जाये कि दोष किसका है, मैं क्या न्याय कर सकता हूँ ?"

इस दृश्य को देखकर भीम का रक्त उबाल खाने लगा, परन्तु धर्म-राज युधिष्ठिर ने आँख के संकेत से उन्हें शान्त कर दिया। वह गम्भीर वाणी में बोले, "सौरिन्ध्री ! तुम्हें इस प्रकार दरबार में नहीं आना चाहिये था। तुम महारानी जी के पास जाओ।"

सौरिन्ध्री ने रनिवास में जाकर महारानी को यह समाचार दिया तो उन्हें अपने भाई की नीचता पर बहुत पश्चाताप हुआ। वह उसे को धैर्य बधाकर बोली, "सौरिन्ध्री ! तुम जो दण्ड कहोगी वही मैं कीचक को दिलाऊँगी, तुम चिन्ता न करो।"

वह अपनी बहन के पास जाकर बोला, "बहन ! मैं सौरिन्ध्री के बिना जीवित नहीं रह सकता। मैं इसे बल-प्रयोग से भी अपने वश में कर सकता हूँ, परन्तु बल-प्रयोग से प्राप्त स्त्री के हृदय पर अधिकार नहीं किया जा सकता। तुम इस कार्य में मेरी सहायता करो।"

महारानी बोलीं, "कीचक ! मैं तुम्हारे विचारों से सहमत नहीं हूं, परन्तु क्यों कि तुम मेरे भाई हो इसलिये एक उपाय बताती हूं। तुम अपने महल में भोज का आयोजन करो। मैं वहाँ से भोजन लाने के लिये सौरिन्ध्री को भेजूंगी। तब तुम इसे अपनी वाक-चातुरी से अपने वश में करने का प्रयास करना। यदि यह प्रसन्नतापूर्वक तय्यार हो गई तो मैं अनुमति दे दूंगी।"

निश्चित समय पर कीचक ने दावत का प्रबन्ध किया। महारानी ने सौरिन्ध्री से कहा, "सौरिन्ध्री ! मुझे बड़ी भूख लगी है। तुम भाई के महल से जाकर मेरा भोजन ले आओ।"

सौरिन्ध्री महारनी की बात सुनकर भयभीत हो उठी। वह बोलीं, "महारानी जी ! मुझसे आप अन्य जो सेवा चाहें ले लें, परन्तु एकांत में सेनापति जी के महल मे जाने का आदेश न दें। वह मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहते हैं। मेरे वहां जाने पर अनर्थ होने की अशंका है।"

महारानी आश्वासन देकर बोलीं', "सौरिन्ध्री ! मेरे रहते तुम्हारा अपमान करने का साहस किसी में नहीं है। तुम निर्भय होकर वहाँ जाओ और मेरा भोजन ले आओ।"

पांचाली को विवश होकर वहां जाना पड़ा। कीचक उसकी प्रतीक्षा में बैठा था। पांचाली जैसे ही कीचक के महल में पहुंची तो उसने बल प्रयोग करना चाहा। पांचाली चिल्ला कर बोली, "सेनापति कीचक ! मेरे साथ बल-प्रयोग न करो। मेरे पति आ गये तो फिर तुम्हारी कोई रक्षा न कर सकेगा। बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा। मैं आपसे अपने सतीत्व की भिक्षा मांगा हूँ।"

कीचक अंधा हो गया था। उसने कहा, "सुन्दरी ! मैं तुम्हारे पति से भयभीत होने वाला नहीं हूँ। मैं तुम्हारी कृपा प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम्हारा एक संकेत मात्र तुम्हें दासी से रानी बना सकता है। समझदारी से काम लो सौरिन्ध्री ! मूर्खता न करो। ऐसा अवसर जीवन मे बार-बार हाथ नही आता है।"

पांचाली का हृदय कीचक के शब्द सुनकर विदीर्ण हो उठा। कीचक ने उन्हें अपनी बाहुओं मे आबद्ध करना चाहा तो उन्होंने उसे धक्का दे दिया। कीचक पलंग पर गिर पड़ा और वह दरबार की दिशा में भाग खड़ी हुई।

कीचक भी पांचाली को भागते देखकर उसके पीछे-पीछे हो लिया। उसने दरबार मे जाकर पांचाली के केश पकड़ लिये और उन पर लात घूँसों का प्रहार किया।

सौरिन्ध्री महाराज विराट के सामने रोकर सकरुण वाणी में बोली, "महाराज ! क्या आपका न्याय यही है कि आपके दरबार में एक अबला पर इस प्रकार अत्याचार हो ?"

कीचक का विरोध करने का साहस विराट मे भी नही था। वह बातें बनाकर बोले, "सौरिन्ध्री ! जब तक मुझे यह न ज्ञात हो जाये कि दोष किसका है, मैं क्या न्याय कर सकता हू ?"

इस दृश्य को देखकर भीम का रक्त उबाल खाने लगा, परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने आँख के संकेत से उन्हें शान्त कर दिया। वह गम्भीर वाणी मे बोले, "सौरिन्ध्री ! तुम्हें इस प्रकार दरबार में नहीं आना चाहिये था। तुम महारानी जी के पास जाओ।"

सौरिन्ध्री ने रनिवास मे जाकर महारानी को यह समाचार दिया तो उन्हें अपने भाई की नीचता पर बहुत पश्चाताप हुआ। वह उसे को धैर्य बंधाकर बोलीं, "सौरिन्ध्री ! तुम जो दण्ड कहोगी वही मैं कीचक को दिलाऊंगी, तुम चिन्ता न करो।"

वह अपनी बहन के पास जाकर बोला, "बहन ! मैं सौरिन्ध्री के बिना जीवित नहीं रह सकता। मैं इसे बल-प्रयोग से भी अपने वश में कर सकता हूँ, परन्तु बल-प्रयोग से प्राप्त स्त्री के हृदय पर अधिकार नहीं किया जा सकता। तुम इस कार्य में मेरी सहायता करो।"

महारानी बोलीं, "कीचक ! मैं तुम्हारे विचारों से सहमत नहीं हूं, परन्तु क्यों कि तुम मेरे भाई हो इसलिये एक उपाय बताती हूं। तुम अपने महल में भोज का आयोजन करो। मैं वहाँ से भोजन लाने के लिये सौरिन्ध्री को भेजूंगी। तब तुम इसे अपनी वाक-चातुरी से अपने वश में करने का प्रयास करना। यदि यह प्रसन्नतापूर्वक तय्यार हो गई तो मैं अनुमति दे दूंगी।"

निश्चित समय पर कीचक ने दावत का प्रबन्ध किया। महारानी ने सौरिन्ध्री से कहा, "सौरिन्ध्री ! मुझे बड़ी भूख लगी है। तुम भाई के महल से जाकर मेरा भोजन ले आओ।"

सौरिन्ध्री महारनी की बात सुनकर भयभीत हो उठीं। वह बोलीं, "महारानी जी ! मुझसे आप अन्य जो सेवा चाहें ले लें, परन्तु एकांत में सेनापति जी के महल में जाने का आदेश न दें। वह मेरा सतीत्व नष्ट करना चाहते हैं। मेरे वहां जाने पर अनर्थ होने की अशंका है।"

महारानी आश्वासन देकर बोलीं, "सौरिन्ध्री ! मेरे रहते तुम्हारा अपमान करने का साहस किसी में नहीं है। तुम निर्भय होकर वहाँ जाओ और मेरा भोजन ले आओ।"

पांचाली को विवश होकर वहाँ जाना पड़ा। कीचक उसकी प्रतीक्षा में बैठा था। पांचाली जैसे ही कीचक के महल में पहुंची तो उसने बल प्रयोग करना चाहा। पांचाली चिल्ला कर बोली, "सेनापति कीचक ! मेरे साथ बल-प्रयोग न करो। मेरे पति आ गये तो फिर तुम्हारी कोई रक्षा न कर सकेगा। बहुत बड़ा अनर्थ हो जायेगा। मैं आपसे अपने सतीत्व की भिक्षा मांगा हूँ।"

कीचक अंधा हो गया था। उसने कहा, "सुन्दरी ! मैं तुम्हारे पति से भयभीत होने वाला नही हूँ। मै तुम्हारी कृपा प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम्हारा एक सकेत मात्र तुम्हे दासी से रानी बना सकता है। समझदारी से काम लो सौरिन्ध्री ! मूर्खता न करो। ऐसा अवसर जीवन में बार-बार हाथ नही आता है।"

पाचाली का हृदय कीचक के शब्द सुनकर विदीर्ण हो उठा। कीचक ने उन्हें अपनी बाहुओं मे आबद्ध करना चाहा तो उन्होंने उसे धक्का दे दिया। कीचक पलग पर गिर पड़ा और वह दरबार की दिशा मे भाग खड़ी हुई।

कीचक भी पाचाली को भागते देखकर उसके पीछे-पीछे हो लिया। उसने दरबार मे जाकर पाचाली के केश पकड़ लिये और उन पर लात घूंसों का प्रहार किया।

सौरिन्ध्री महाराज विराट के सामने रोकर सकरुण वाणी मे बोली, "महाराज ! क्या आपका न्याय यही है कि आपके दरबार में एक अबला पर इस प्रकार अत्याचार हो ?"

कीचक का विरोध करने का साहस विराट मे भी नही था। वह बातें बनाकर बोले, "सौरिन्ध्री ! जब तक मुझे यह न ज्ञात हो जाये कि दोष किसका है, मैं क्या न्याय कर सकता हू ?"

इस दृश्य को देखकर भीम का रक्त उबाल खाने लगा, परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर ने आँख के सकेत से उन्हें शान्त कर दिया। वह गम्भीर वाणी मे बोले, "सौरिन्ध्री ! तुम्हें इस प्रकार दरबार में नहीं आना चाहिये था। तुम महारानी जी के पास जाओ।"

सौरिन्ध्री ने रनिवास मे जाकर महारानी को यह समाचार दिया तो उन्हें अपने भाई की नीचता पर बहुत पश्चाताप हुआ। वह उस को धैर्य बंधाकर बोली, "सौरिन्ध्री ! तुम जो दण्ड कहोगी वही मैं कीचक को दिलाऊगी, तुम चिन्ता न करो।"

सौरिन्ध्री बोली, "महारानी जी ! मेरे अपमान का बदला मेरे ाति स्वयं ले लेगें। वह कीचक से बहुत बलवान हैं। इसके लिये आपको चेन्ता नहीं करनी होगी।"

जब सब सो गये तो पांचाली भीम के पास पहुंचीं। भीम जाग रहे ा। उनके दिल में कीचक के प्रति ज्वाला सुलग रही थी। उनके नेत्रों ा वर्ण लाल हो रहा था और भुजदण्ड फड़क रहे थे। अर्जुन भी क्रोध- ाश में इधर-उधर घूम रहे थे।

भीम की दशा देखकर पांचाली समझ गई कि उनके अपमान की ालन उनके हृदय को विद्ध किये है। वह चुपचाप जाकर भीम के ामने खड़ी हो गई। पांचाली के नेत्र डबडबाये हुए थे।

भीम उन्हें सांत्वना देकर बोले, "पांचाली ! तुम्हारा अपमान करने वाला कल रात्रि तक जीवित नहीं रह सकता। तुम किसी प्रकार उसे नगर के बाहर वाली नाट्यशाला तक लाने का प्रयत्न करो। मैं उसका वहीं काम तमाम कर दूंगा।"

भीम के ये शब्द सुनकर पांचाली के विद्ध हृदय को सांत्वना मिली। वह चुपचाप अपने शयनागार में चली गई।

दूसरे दिन अवसर देखकर कीचक पांचाली के पास आ और अपने कृत्य की क्षमा-याचना करके प्रेम प्रदर्शित करने लगा। वह पांचाली पर बुरी तरह आसक्त हो चुका था।

सौरिन्ध्री बोली, "यहां आपसे बातें करते मुझे लज्जा आती है सेनापति ! यदि आप वास्तव में मुझ से प्रेम करते हैं तो रात्रि को नाट्य शाला में पधारिये। वहां एकान्त में आप से सब बातें निश्चित होने पर मैं अपने पति को छोड़ सकती हूं।"

कीचक सौरिन्ध्री का प्रस्ताव सुनकर प्रसन्नता से खिल उठा। वह रात्रि की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा। रात्रि होने पर वह सज-धज कर अकेला ही नाट्यशाला की ओर चल पड़ा।

सौरिन्ध्री ने महावली भीम को दिन में ही यह सूचना दे दी थी कि कीचक रात्रि में नाट्यशाला के अन्दर आयेगा। भीम वहां पहले ही सौरिन्ध्री की साड़ी पहनकर जा बैठा था।

कीचक ने दूर से देखा सौरिन्ध्री वहां बैठी थी। वह पागल की तरह उसे आलिंगनबद्ध करने के लिये दौड़ पड़ा। भीम ने कीचक के निकट आते ही अपनी विशाल भुजाओं मे उसे जकड़ लिया और दबाकर उसकी हड्डी-पसलियाँ चूर-चूर कर दीं। कीचक को मृतक देखकर पांचाली ने संतोष की श्वांस ली और वह अपने शयनागार को लौट गई।

कीचक की मृत्यु का समाचार समस्त विराट-नगरी में फैल गया। कीचक के बन्धुबान्धवों ने निश्चय किया कि कीचक के शव के साथ सौरिन्ध्री को भी बांध दिया जाय क्यों कि उसके पति ने ही कीचक की हत्या की है।

सौरिन्ध्री को बलपूर्वक कीचक के शव के साथ बांध दिया गया। यह देखकर भीम तिलमिला उठे। उन्होने किसी से कुछ न कहा और वह कीचक की अर्थी के श्मशान में पहुचने से पूर्व ही वहां जा पहुचे। भीम ने तालाब से पोतनी मिट्टी लेकर अपने सारे अङ्ग पर लपेट ली और कीचक की अर्थी की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ देर पश्चात अर्थी श्मशान में आई और कीचक के शव को सौरिन्ध्री के साथ चिता पर रख दिया गया। चिता में अग्नि प्रज्वलित करने की तैयारी होने लगी। वे सब लोग चिता के चारो ओर एकत्रित हो गये।

महावली भीम ने उपयुक्त समय पर एक ताड़ का वृक्ष उखाड़ा और वह उसे लेकर कीचक के बन्धुओं पर टूट पड़े। भीम ने सब को मार-मार कर भूमि पर गिरा दिया तथा उन मे से कुछ नगरी की ओर भाग गये।

भीम ने पांचाली को कीचक के शव से खोल कर पृथक खड़ी कर दि

श्रीर कीचक के मृतक भाईयों को चिता पर रखकर श्रग्नि प्रज्वलित कर दी। वे सब चिता पर जलकर भस्म हो गये।

इस घटना का समाचार विराट-नगरी में पहुंचा तो वहाँ श्रातंक छा गया। महाराज विराट भी सौरिन्ध्री के पति से भयभीत हो उठे। उन्होंने सौरिन्ध्री को श्रपने रनिवास की सेवा से मुक्त करने का निश्चय-कर लिया।

महाराज विराट ने जब श्रपना यह निश्चय सौरिन्ध्री को सुनाया तो वह उनसे करुणाद्र स्वर में बोलीं, "महाराज ! मेरे पति कभी कोई श्रनीतिपूर्ण कार्य नहीं करते हैं। श्रापने मुझे सुरक्षा प्रदान की है। मेरे पति सर्वदा गुप्त रूप में श्रापकी रक्षा करेंगे। इस बात का प्रमाण श्रापको उस समय मिलेगा जब श्राप कभी श्रापत्ति-ग्रस्त होंगे।"

सौरिन्ध्री की यह बात सुनकर महारानी बोलीं, "महाराज ! यदि यही बात है तो सौरिन्ध्री को यथास्थान बनी रहने दीजिये। मेरे भाई कीचक को सौरिन्ध्री के साथ ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं था। उसने श्रौर उसके भाइयों ने श्रपने कुकृत्य का फल भोगा है। इसमें सौरिन्ध्री का कोई दोष नहीं है।"

महारानी की बात सुन कर महाराज विराट ने सौरिन्ध्री को महारानी की सेवा में बनी रहने दिया। इससे पांचाली के ऊपर श्राने वाली विपत्ति टल गई।

५

पाण्डवों के वनवास का तेरहवां वर्ष समाप्त हो चुका था। दुर्योधन सारा प्रयास करने पर भी उनका कहीं पता न चला सका। उसके दूतों ने देश-विदेश सब छान मारे। वे जहाँ भी गये वहां से उन्हें, निराश होकर लौटना पड़ा। उसके दूत हताश होकर बोले, "महाराज! हमने नगर, पर्वत, वन, तीर्थ सब छान मारे परन्तु हमें पाण्डवों का कहीं पता नहीं चला। ज्ञात नहीं वे कहां जाकर छिप गये हैं।"

एक वर्ष पश्चात दुर्योधन को सूचना मिली कि मत्स्य-राज्य के सेनापति कीचक का वध हो गया। कुछ दिन पूर्व वहां जीवमृत पहलवान को भी पछाड़ा गया था। दुर्योधन ने सोचा सम्भवतः पाण्डव गुप्त रूप में वहीं कहीं छिपे हैं।"

सुशर्मा बोला, "महाराज! इस समय कीचक की मृत्यु हो जाने से मत्स्य-राज्य अनाथ हो गया है। आप उस पर आक्रमण करेंगे तो आपको अपनी सेना के संगठन के लिये बहुत बड़ी सम्पत्ति हाथ लगेगी।"

दुर्योधन ने सुशर्मा को सेनापति बनाकर मत्स्य देश पर आक्रमण करने का आयोजन किया। भीष्म ने व्यर्थ किसी देश पर आक्रमण करने की अनुमति नहीं दी, परन्तु दुर्योधन ने उनकी बात न मानी और सुशर्मा को प्रस्थान करने की आज्ञा दे दी।

सुशर्मा ने विराट-नगर पर आक्रमण कर दिया और उनकी गौशाला को अपने अधिकार में ले लिया। गौशाला पर अधिकार करके उन्होंने नगर की ओर प्रस्थान किया।

इस आक्रमण को देख कर महाराज विराट भयभीत हो उठे। उन्हें इस आपत्ति-काल में कीचक की याद आई। वह सोचने लगे कि यदि इस समय कीचक होता तो वह नगर की रक्षा कर लेता।

उन्हें व्याकुल देखकर कंक जी बोले, "महाराज ! भयभीत न हों। इस सेना को पराजित करने के लिये अकेला वल्लभ पर्याप्त है। आप निश्चिन्त बैठे तमाशा देखते रहें।"

महाराज विराट ने सेनापति को सेना तैयार करने का आदेश दिया कंक, वल्लभ, तन्त्रिक और ग्रन्थिक भी चार रथों पर चढ़कर युद्ध के लिये उद्यत हो गये। घमासान युद्ध हुआ। युद्ध चांदनी रात में हो रहा था।

युद्ध में विराट का सारथी मारा गया और सुशर्मा ने विराट को बांधकर अपने रथ पर डाल लिया। यह देखकर युधिष्ठिर अधीर हो उठे। वह भीम से बोले, "भीम ! इस समय हमें महाराज विराट की रक्षा करनी होगी। भले ही हमारा गुप्त वेष प्रकट हो जाये। तुम सुशर्मा पर आक्रमण करके विराट को बन्धन-मुक्त कराओ। विराट ने हमारी रक्षा की है। हमें भी उसकी रक्षा करनी चाहिये।'

युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त कर भीम ने अपना रथ सुशर्मा की ओर मोड़ दिया और एक ही वार में सुशर्मा के रथ को खण्ड-खण्ड करके विराट को बन्धन-मुक्त कर दिया। उन्होंने सुशर्मा को बांधकर युधिष्ठिर के चरणों पर ला पटका।

युधिष्ठिर बोले, "महाराज विराट से अनेकों बार हार कर भी तुमने विराट-राज्य पर आक्रमण किया। जाओ भविष्य में कभी ऐसा करने का साहस न करना।"

महाराज विराट को अपनी इस विजय पर हार्दिक प्रसन्नता हुई, परन्तु ज्यों ही वह दरबार में पहुंचे तो उन्हें पता चला कि कौरव-सेना ने उन पर आक्रमण कर दिया है। यह समाचार सुन कर वह फिर भयभीत हो उठे। उनमें इतना साहस नहीं था कि वह कौरव-सेना से युद्ध कर पाते।

युवराज उस समय रनिवास में थे। उन्हें कौरवों के आक्रमण की

सूचना मिली तो वह बोले, "यदि कोई अच्छा सारथी होता तो मैं आज कौरवों को उनकी दुष्टता का आनन्द चखा देता।"

सौरिन्ध्री यह सुन कर मुस्करा दी। वह युवराज की बहन उत्तरा से बोली, 'युवराज वृहन्नला को सारथी बनकर अपने साथ चलने को कहें। उन्होंने कई बार अर्जुन का रथ हांका है। वह धनुर्विद्या में भी प्रवीण हैं। उन्हें कोरा संगीतज्ञ ही न समझें।"

राज्य पर विपत्ति के बादल मँडराते देख कर उत्तरा ने सौरिन्ध्री की बात युवराज से कही तो युवराज हँसकर बोले, "यह उपहास का समय नहीं है उत्तरा! वृहन्नला का युद्ध से क्या सम्बन्ध ? वह तो बेचारे गायक हैं।"

उत्तरा बोली, "भय्या! सौरिन्ध्री झूठ नहीं बोल सकती! मैं अभी जाकर वृहन्नला से आपका रथ जोतने के लिये प्रार्थना करती हूँ। वह मेरी बात को कभी नहीं टाल सकते।

उत्तरा की बात सुन कर, अर्जुन बोले, चलिये युवराज! मैं उत्तरा का कहना मैं नहीं टाल सकता ?"

युवराज ने कहा, "तुम मुझे एक बार युद्ध-भूमि में पहुँचा दो वृहन्नला! फिर देखना मैं कौरवों को कैसी शिक्षा देता हूँ। अभी उनका वीरों से पाला नहीं पड़ा है। शीघ्रता करो। मेरे भुजदण्ड उनसे युद्ध करने के लिये फड़क रहे हैं। आज तुम भी मेरा जौहर देखना।"

वृहन्नला और सौरिन्ध्री हँस कर बोले, "युवराज! शीघ्रता करें, रथ तैयार है। देर करने की आवश्यकता नहीं है।"

सेवक-गण युवराज के अस्त्र-शस्त्र और कवच उठा लाये। बेचारे युवराज को युद्ध के लिये उद्यत होना पड़ा।

वृहन्नला ने कवच पहना तो रनिवास की सब रानियाँ हँस पड़ीं। युवराज का रथ युद्ध-भूमि में पहुँचा और उनकी दृष्टि सामने

खड़ी कौरव-सेना पर पड़ी तो उनके होश उड़ गये। वह भयभीत हो कर वृहन्नला से बोले, "वृहन्नला! मुझे वापस ले चलो। इतनी बड़ी सेना के साथ मैं युद्ध नहीं कर सकता। तुम मुझे सकुशल घर पहुँचा दो। मैं तुम्हारा जीवन भर आभारी रहूँगा। मैं तुम्हें मुँह माँगा पुरस्कार दूँगा।"

वृहन्नला लौटने को उद्यत न हुए तो युवराज रथ से उतर कर विराट नगरी की ओर भाग लिये। वृहन्नला ने दौड़ कर उन्हें पकड़-लिया और रथ पर बिठा कर बोले, "घबराओ नहीं युवराज! तुम रथ हांको और मैं युद्ध करूंगा। तुम रथ को पहले उस वट-वृक्ष के पास ले चलो, जो श्मशान-भूमि के निकट है।"

वृहन्नला की गम्भीर वाणी सुनकर युवराज का तनिक धैर्य बंधा। रथ को वट-वृक्ष के पास ले जाया गया और वृहन्नला ने वृक्ष पर चढ़-कर उसकी खरकोडल से अस्त्र-शस्त्र और कवच निकाले। अपने अस्त्र-शस्त्रों और कवच से सुसज्जित होकर अर्जुन रथ पर बैठे तो उन्हें आज अपने अन्दर एक नवीन स्फूर्ति दिखाई दी।

कौरवों की दृष्टि अर्जुन पर पड़ी तो उनके छक्के छूट गये। दुर्योधन प्रसन्न होकर भीष्मपितामह से बोला, "दादा! इस आक्रमण ने पाण्डवों को समय से पूर्व ही प्रकट होने पर विवश कर दिया। अब इन्हें दुबारा बारह वर्ष के लिये वन जाना होगा। मेरा विराट नगरी पर आक्रमण करने का मात्र यही अभिप्राय था।"

भीष्म पाण्डवों के वनवास का हिसाब लगाकर बोले, "आज पांच महीने छै दिन तेरह वर्ष से ऊपर हो चुके हैं दुर्योधन! अब तुम्हें व्यर्थ यहाँ इन विराट की गायों के पीछे युद्ध नहीं ठानना चाहिये। अर्जुन के सामने हमारी विजय सम्भव नहीं है।"

कर्ण पितामह की बात सुनकर बोला, "पितामह! आप हर समय पाण्डवों की ही प्रशंसा करते रहते हैं। आज मेरा भी तो जौहर देखिये

मैंने अर्जुन को मैदान से भगा न दिया तो मेरा नाम भी कर्ण नहीं।"

कर्ण की गर्वोक्ति कृप, भीष्म और अश्वत्थामा को भली न लगी। अश्वत्थामा बोला, "कर्ण! यह तर्क-वितर्क की बात नहीं है। छल-प्रपंच से तुम लोगों ने पाण्डवों को कष्ट पहुंचा लिया। धर्म-युद्ध में तुम अर्जुन पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते। आज अवसर सामने है। देखेंगे तुम्हारे अन्दर कितना पराक्रम है। हम पारिवारिक विग्रह नहीं चाहते, परन्तु हमें दिखता है कि तुम कुरु-कुल का सर्वनाश कराकर ही दम लोगे। दुर्योधन की बुद्धि को तुमने भ्रष्ट कर दिया है।"

कर्ण गर्वपूर्ण स्वर में बोला, "अश्वत्थामा! रण-भूमि में आकर तुम्हें ये कायरतापूर्ण उपदेश सुनाना शोभा नहीं देता। क्या तुम चाहते हो कि हम अर्जुन की सूरत देखकर यहाँ से भाग खड़े हों?"

जब भीष्म ने देखा कि युद्ध करना ही होगा तो उन्होंने दुर्योधन को गऊओं के साथ दूर हटा दिया। द्रोणाचार्य को बीच में रख कर अश्वत्थामा को बाँई तथा कृपाचार्य को दाँई ओर कर मोर्चा संभालने के लिये कहा। फिर कर्ण से बोले "कर्ण! तुम आगे बढ़ कर आक्रमण करो। हम पीछे से मार सम्भालेंगे।"

आज तेरह वर्ष पश्चात द्रोणाचार्य ने अर्जुन को देखा तो उनके हृदय में अनुराग जाग्रत हो उठा। वह बोले, "महामना भीष्म! देखो धनुर्धर अर्जुन कैसा प्रचण्ड रूप धारण किये बढ़ता चला आ रहा है।" उसी समय अर्जुन के दो तीर आये और द्रोणाचार्य के दोनों पैरों के पास आकर गिरे। उनका हृदय गद्गद् हो उठा। तभी दो बाण द्रोणाचार्य के कानों के पास से सनसनाते हुये निकल गये। द्रोण बोले, "अर्जुन के दो बाण जो मेरे पैरों के पास गिरे हैं, उनके द्वारा अर्जुन ने मेरा अभिवादन किया है और जो दो तीर मेरे कानों के पास से गये हैं उनके द्वारा अर्जुन ने कुशल-क्षेम पूछा है।"

भीष्म बोले, "आचार्य द्रोण! आज अर्जुन को सामने देख कर

हृदय गर्व से फूल उठा है।"

अर्जुन ने दूर से देखा कि सेना में दुर्योधन नहीं था। उन्होंने दूर दृष्टि फैलाई तो उन्हें धूल उड़ती दिखाई दी। वह समझ गये कि दुर्योधन गऊओं को लिये सेना के साथ चला जा रहा है। वह युवराज से बोले, "रथ उस ओर दौड़ा कर ले चलो। हमारा उद्देश्य सेना का वध करना नहीं, अपनी गऊओं की रक्षा करना है।"

अर्जुन का रथ तीव्र गति से उसी ओर को बढ़ चला जिस ओर दुर्योधन गऊओं को ले जा रहा था। अर्जुन ने दुर्योधन पर तीव्र बाणों की वर्षा करके उससे सब गऊओं को छीन लिया और ग्वालों से बोले "तुम लोग अपनी गऊओं को नगर की ओर ले जाओ।"

अर्जुन को दुर्योधन की ओर बढ़ते देखकर कर्ण तीव्र गति से बीच में आ गया। अर्जुन ने दुर्योधन की दिशा में बढ़ना छोड़ कर पहले कर्ण से मुठभेड़ की। अर्जुन ने एक बार में कर्ण को रथ से नीचे गिरा दिया और उसके भाई अधिरथ के पुत्र को यमपुरी पहुंचा दिया। उसकी मृत्यु से उत्तेजित होकर कर्ण ने फिर भीषण युद्ध किया, परन्तु अर्जुन के बाणों ने कर्ण का बदन छलनी कर दिया। वह अपने प्राण लेकर वहां से भाग खड़ा हुआ। अर्जुन के सामने उसका ठहरना सम्भव न रहा।

कर्ण को भागते देख कर दुर्योधन अर्जुन पर टूट पड़ा। अर्जुन ने उसे भी घायल कर दिया और फिर कृपाचार्य पर आक्रमण किया। अर्जुन के तीरों से बिंधकर कृपाचार्य के रथ के घोड़े रथ को ले कर भाग खड़े हुए और कृपाचार्य भूमि पर गिर पड़े।

अर्जुन ने फिर अपना रथ द्रोणाचार्य की ओर मोड़ा। गुरु और शिष्य का घमासान युद्ध हुआ। अर्जुन ने द्रोणाचार्य के रथ को बाणों की वर्षा करके चारों ओर से ढक दिया। यह देखकर अश्वस्थामा अर्जुन पर टूट पड़ा, परन्तु अर्जुन के एक ही तीर ने अश्वस्थामा के

सब अस्त्र-शस्त्रों को विफल कर दिया।

कर्ण एक बार फिर साहस करके अर्जुन के सामने आया। अर्जुन ललकार कर बोले, "नीच कर्ण ! तू एक बार पीठ दिखाकर फिर मेरे सामने आया है। तूने ही हमारे परिवार में पारस्परिक फूट का बीज बोया हुआ है। आज तुझे तेरे कुकर्मों का फल चखाकर ही दम लूंगा।"

कर्ण उत्तेजित होकर गरजता हुआ बोला, "व्यर्थ प्रलाप बन्द कर अर्जुन ! मेरे सामने आ। आज तेरा छठी तक का खाया-पीया न निकाल लिया तो मेरा नाम कर्ण नहीं।"

दोनों में घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। अर्जुन के बाणों ने कर्ण के अस्त्र-शस्त्रों को काटकर उसके रथ को नष्ट कर, उसे भूमि पर गिरा दिया। कर्ण अपने प्राणों की रक्षा के लिये फिर मैदान से भाग खड़ा हुआ। इस बार उसने फिर पीछे लौटकर नहीं देखा।

जब कौरव-पक्ष के सब योद्धा भाग गये तो भीष्म ने अर्जुन से मोर्चा लिया। पितामह अर्जुन के तीव्र बाणों की वर्षा के सामने न ठहर सके। वह मूर्छित होकर रथ पर गिर पड़े।

दादा भीष्म के मूर्छित होकर गिरने पर कौरवों ने धर्माधर्म का विचार त्याग कर एक साथ मिलकर अर्जुन पर आक्रमण किया। यह देख कर अर्जुन ने एक ऐसा बाण चलाया जिससे कौरवों की सारी सेना मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी। उनके पक्ष के सब सैनिक अचेत हो गये।

बहुत देर पश्चात् जब दुर्योधन की चेतना लौटी तो वह बोला, "दौड़ो-दौड़ो ! अर्जुन सब गऊओं को ले गया।"

भीष्म हँसकर बोले, "दुर्योधन ! अब क्यों व्यर्थ प्रलाप कर रहा है। यही खैर समझ कि वह हमें जीवित छोड़ गया। वह चाहता तो हम सबके सिर उतार कर ले जा सकता था। अर्जुन पर विजय प्राप्त करना तुम्हारे लिये असम्भव है। वह धर्म-युद्ध करने वाला वीर है।

इसी लिये उसने मूर्छित पड़ें सैनिकों पर प्रहार नही किया। अपनी बचीकुची इज्जत को लेकर चुपचाप हस्तिनापुर लौट चलो।"

विवश होकर दुर्योधन को पितामह की बात माननी पड़ी। कौरव-सेना खाली हाथों हस्तिनापुर लौट गई।

अर्जुन मार्ग में युवराज से बोले, "युवराज ! तुम नगर में मेरा किसी को परिचय न देना। तुम कहना कि युद्ध में तुम्हारे ही पराक्रम विजय प्राप्त हुई है। तुमने ही कौरवों को हराकर भगा दिया है और अपनी गऊए छीन ली है।"

युवराज बोला, "महात्मन् ! यह कार्य मेरे लिए नितान्त असम्भव है। आपका श्रेय मैं अपने ऊपर कदापि नहीं लेसकता।"

विराट नगर में युवराज उत्तर की विजय का समाचार फैल गया। महाराज विराट यह समाचार प्राप्त कर गद्-गद् हो उठे। उनके आनन्द का पारावार न रहा।

विराट भरी सभा में जब अपने पुत्र की प्रशंसा करने लगे तो कंक जी चुप न रह सके। वह बोले, "महाराज ! वृहन्नला, जिसका सारथी हो, वह कभी पराजित नहीं हो सकता।"

विराट को कंक जी की यह बात अच्छी न लगी। वह फिर अपने ही पुत्र की प्रशंसा करनें लगे।

कंक जी फिर बोले, "महाराज ! वृहन्नला उत्तर के साथ न होता तो उत्तर का समर-भूमि से सकुशल लौटना भी सम्भव नहीं था।"

यह सुन कर महाराज विराट क्रोधित हो उठे। वह क्रुद्ध हो कर बोले, "कंक जी ! आप हमारे नौकर होकर हमारे पुत्र की प्रशंसा तो करते नहीं, वृहन्नला की प्रशंसा कर रहे हैं।" यह कह कर उन्होंनें पासा उठाकर कंक जी के मुंह पर दे मारा। उसकी चोट से कंक जी की नाक से रक्त वह चला।

उसी समय युवराज उत्तर राज-सभा में आ गये। उन्होंने कंक जी

की नाक से रक्त बहता देख कर अपने पिता जी से पूछा, "पिताजी ! कंक जी की नाक से रक्त कैसे बह रहा है ?"

महाराज विराट बोले, 'बेटा ! मैं तुम्हारी विजय की प्रशंसा कर रहा था। कंक जी बोले कि यदि बृहन्नला तुम्हारे साथ न होता तो तुम्हारा युद्ध-भूमि से लौटना भी असम्भव था। यह सुनकर मुझे क्रोध आ गया और मैंने पासा उठा कर इनके मुँह पर दे मारा।"

यह सुनकर युवराज उत्तर को हार्दिक खेद हुआ। वह अपने पिता, महाराज विराट से बोला, "महाराज ! आपने बहुत बड़ी भूल की। जिन्हें आप कंक जी नामक दीन ब्राह्मण समझ रहे हैं यह धर्मराज युधिष्ठिर हैं, जिन्हें आप बृहन्नला समझ रहे हैं वह धनुर्धर अर्जुन हैं, जिन्हें आप वल्लभ समझ रहे हैं वह महाबली भीम है, जिन्हें आप सौरिन्ध्री समझ रहे हैं वह द्रुपद नगर की राजकुमारी पांचाली हैं। इसी प्रकार ग्रन्थिक नकुल तथा तन्त्रीपाल सहदेव हैं। हमारा सौभाग्य है कि इन महानुभावों ने विराट-नगरी में आकर हमारी रक्षा की।"

यह सुनकर महाराज विराट चकित रह गये। उन्हें अपने कृत्य पर हार्दिक पश्चाताप हुआ। उनके नेत्र डबडबा आये। वह महाराज युधिष्ठिर से लिपट कर रो पड़े और गद्-गद् स्वर में बोले, 'धर्मराज ! गत एक वर्ष में, अनजाने में, हमसे जो भूलें हुई हों उन्हें क्षमा कर दीजिये।"

महाराज युधिष्ठिर बोले "महाराज विराट ! आपने हमें अपने यहाँ आश्रय देकर हमारे ऊपर महान् उपकार किया है। यदि हमें आपका आश्रय न मिलता तो हम लोगों के लिये अपना गुप्तवास का एक वर्ष निकालना कठिन हो जाता। आपकी कृपा से यह वर्ष सकुशल निकल गया। अब हम अधिकार और न्यायपूर्वक कौरवों से अपना आधा राज्य वापस ले सकेंगे। यदि वे देने में आना-कानी करेंगे तो हम धर्म युद्ध की घोषणा करेंगे।"

महाराज विराट अपना राजसिंहासन छोड़ कर नीचे खड़े हो गये

और धर्मराज युधिष्ठिर से करबद्ध प्रार्थना की कि वह उनके सिंहासन पर विराज कर उसे पवित्र करें।

पाण्डवों के विराट नगरी में इस प्रकार रहने के रहस्य का उद्घाटन हुआ तो वहाँ आनन्द की लहर दौड़ गई। महाराज विराट ने अपने नगर में एक विराट उत्सव का आयोजन किया और पाण्डवों का उसमें राजोचित सत्कार किया।

महाराज विराट की पत्नी ने पांचाली को अपनी छाती से लगा कर अपने भाई कीचक तथा उसके अन्य सम्बन्धियों के नीच कृत्य की क्षमा-याचना की।

महाराज विराट बोले, "धर्मराज ! यों तो महाराज पाण्डु की विराट-राज्य पर पहले से ही महान् अनुकम्पा रही है, परन्तु अब मैं चाहता हूँ कि हमारा यह सम्बन्ध और भी दृढ़ हो जाये। क्या इसके लिये आप कोई सुझाव प्रस्तुत करने की कृपा करेंगे ?"

महाराज युधिष्ठिर बोले, "आपकी आकांक्षा को फलीभूत करने के लिये मैं चाहता हूं कि आप अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह हमारे छोटे भाई अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ कर दें। यदि इस में आपको कोई आपति न हो तो हम श्री कृष्ण के पास यह शुभ समाचार भेज दें। अभिमन्यु और उसकी माता सुभद्रा आजकल द्वारिकापुरी में ही हैं।"

धर्मराज युधिष्ठिर की बात सुनकर महाराज विराट को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। वह सहर्ष बोले, "धर्मराज ! आपने मेरे मुँह की बात मुझ से छीन ली। मैं भी आपके सामने ठीक यही प्रस्ताव रखना चाहता था।

अर्जुन-सुपुत्र को अपने जामाता के रूप में ग्रहण कर मेरा जीवन सफल होगा।"

महाराज विराट की स्वीकृति प्राप्त कर पाण्डवों ने यह शुभ समा-

...ार द्वारिकापुरी में श्रीकृष्ण के पास भेज दिया और प्रार्थना की कि
...ह और बलरामजी, अभिमन्यु की बारात लेकर, विराट-नगरी में
पधारें।

पाण्डवों ने अभिमन्यु के विवाह का शुभ समाचार अपने सभी मित्रों
को भेजा और उनसे विवाह में सम्मिलित होने की प्रार्थना की। इस
आयोजन के फलस्वरूप उन्हें अपने मित्रों से भेंट करने का शुभ अवसर
प्राप्त हुआ।

अभिमन्यु के विवाह का आयोजन विराट-नगरी में बड़ी धूमधाम
के साथ हुआ। पाण्डवों के सभी सम्बन्धी तथा मित्र विराट नगरी में
पधारे। श्रीकृष्ण और बलराम बारात का आयोजन कर निश्चित समय
पर वहाँ आ गये। काशिराज तथा शिवराज भी अपने इष्ट-मित्रों के साथ
विवाह में सम्मिलित हुए। पांचाली के पिता द्रुपद, धृष्टद्युम्न और
शिखण्डी पांचाल देश से पधारे। विराट-नगरी की शोभा चौगुणी हो
उठी। मंगल-गीतों से वहाँ का वातावरण भर गया। नगरी में उल्लास
और आनन्द की सरिता बह चली।

यथा समय वैदिक रीति से विवाह सम्पन्न हुआ। उत्तरा ने अभि-
मन्यु के गले में जयमाला डाली और बन्दी जनों ने विरदावलियाँ गाकर
चारों दिशाएँ गुंजा दीं।

पाण्डवों को महाराज विराट ने अमूल्य रत्न, धन और ग्राम देकर
उनका सत्कार किया। कर्मचारियों को मुँह मांगे पुरस्कार दिये और
ब्राह्मणों को दान देकर विदा किया।

पाण्डवों का तेरह वर्ष के वनवास का कष्ट आज इस शुभ विवा...
ने विस्मृत कर दिया। पाण्डवों के जीवन में नवीन उल्लास का उद...
हुआ। उनके जीवन में एक नवीन ज्योति जगमगाई। अभिमन्यु के विवा...
से नई पीढ़ी का जीवन अपने कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ।
... आयोजन में उनके सभी हितैषियों ने भाग लि...

उसी समय पाण्डवों को अपने भावी कार्य-क्रम पर विचार करने का अवसर मिला।

इस सभा का संचालन श्री कृष्ण ने किया।

वह सभा के मध्य खड़े होकर गम्भीर वाणी में बोले, "उपस्थित महानुभावो! आप सब को दुर्योधन द्वारा छल-बल से पाण्डवों का राज हड़पने का समाचार विदित है। उसे इस समय दुहराना व्यर्थ है। आज उस घटना को तेरह वर्ष और सात माह व्यतीत हो चुके हैं। पाण्डवों ने अपनी वनवास की अवधि विधिवत समाप्त कर ली है। अब कौरवों को पाण्डवों का आधा राज्य लौटा देना चाहिये। हमारे लिये कौरव और पाण्डव दोनों समान हैं। हम नहीं चाहते कि पारिवारिक कलह हो और इस कुल की मर्यादा को ठेस लगे।

कृप, द्रोण, भीष्म और धृतराष्ट्र की न्यायप्रियता में हमें कोई संदेह नहीं है, परन्तु दुर्योधन अन्याय के पथ पर चल रहा है। वह पाण्डवों का राज्य वापस करने को उद्यत नहीं है। कर्ण दुर्योधन को सत्य-मार्ग पर नहीं आने दे रहा।

हम रक्तपात नहीं चाहते, परन्तु यदि दुर्योधन सत्मार्ग पर न आया तो रक्तपात अवश्य होगा। उसे कोई नहीं रोक सकता। अधर्म को सहन नहीं किया जायगा। पाण्डव अधर्म और अन्याय के सामने झुकने वाले नहीं हैं।

हमें हस्तिनापुर दूत भेज कर ज्ञात करना होगा कि दुर्योधन न्याय से पाण्डवों का राज्य इन्हें वापस लौटाना चाहता है या नहीं। इस विषय पर मैं आप सब महानुभाओं का निश्चित मत जानना चाहता हूँ।"

श्रीकृष्ण के पश्चात बलरामजी बोले, "श्रीकृष्ण का मन्तव्य आप सब पर प्रकट हुआ। देश-प्रजा और कुरु-कुल के हित में यही है कि कौरव पाण्डवों का आधा राज्य इन्हें लौटा दें। इससे पारस्परिक दुर्भावना का अन्त हो जायेगा और व्यर्थ रक्तपात नहीं होगा।

दूत भेजने के विचार से मैं पूरी तरह सहमत हूँ। मैं चाहता हूँ कि यहाँ से जाने वाला दूत उनकी सभा में उस समय प्रस्ताव प्रस्तुत करे जब भीष्म, कृप, द्रोण विदुर इत्यदि सब उपस्थित हों। मुझे विश्वास है कि वे सद्बुद्धि से काम लेंगे।"

सात्यिकी बोला, "हमारे दूत को उन्हें भली प्रकार जता देना चाहिये कि अब अधर्म की नौका में बैठकर दुर्योधन सैर नहीं कर सकेगा। यदि उसने पाण्डवों का आधा राज्य वापस नहीं किया तो निश्चित रूप से युद्ध होगा।"

महाराज द्रुपद ने सात्यिकी के कथन का जोरदार शब्दों में समर्थन किया। वह बोले, "अब समय नम्रता का नहीं रह गया है। इस समय हमारी नम्रता का अर्थ कौरवों के सामने हमारी कायरता होगा। मेरे विचार से हमें अपने मित्रों के पास निमन्त्रण भेजकर सेना एकत्रित करने का कार्य आरम्भ कर देना चाहिये। इस कार्य में तनिक भी विलम्ब करने की आवश्यकता नहीं है। युद्ध अवश्य होगा। इसे कोई टाल नहीं सकता। दुर्योधन बल-प्रयोग के बिना पाण्डवों का आधा राज्य नहीं लौटायेगा। हमें युद्ध और सन्धि दोनों की तय्यारी साथ-साथ करनी चाहिये। दूत भेजने में हमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु युद्ध की तय्यारी को नहीं रोका जा सकता। पुरोहितजी को हस्तिनापुर भेजा जाये। वह नीतिज्ञ हैं और दूत-कार्य के सर्वथा उपयुक्त हैं।"

अन्त में श्रीकृष्ण बोले, 'मैं महाराज द्रुपद के मत का समर्थन करता हूँ। हमें सेना एकत्रित करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये। मैं महाराज द्रुपद से आग्रह करूंगा कि वह मित्रों को निमन्त्रण भेजने का कार्य-भार संभालें और इस कार्य में तनिक भी विलम्ब न करें। हमें दूत भी तुरन्त भेज देना चाहिये इस कार्य में भी विलम्ब की आवश्यकता नहीं है। यदि महाराज धृतराष्ट्र दुर्योधन को सुमार्ग पर ला सकें और कुरु-कुल के कर्णधारों में सद्मति जागृत हो सकी तो ठीक है,

अन्यथा युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई चारा नहीं रह जायगा ।"

सभा में उपस्थित महानुभावों ने एक स्वर से श्रीकृष्ण के मत से सहमति प्रकट की और महाराज द्रुपद के पुरोहित जी ने हस्तिनापुर के लिये प्रस्थान किया। महाराज द्रुपद ने अपने पुरोहित जी को हस्तिनापुर भेज कर पाण्डवों के अन्य मित्र राजाओं के पास निमन्त्रण भेजने की व्यवस्था की।

पाण्डवों के दूत, महाराज द्रुपद के पुरोहित, हस्तिनापुर पहुंचे तो वहाँ सन्धि-सभा का आयोजन किया गया। कौरवों के सभी विशिष्ठ महानुभावों ने उस सभा में भाग लिया। दूत ने सन्धि-पत्र सभा के समक्ष रखा तो दादा भीष्म बोले, "पाण्डव तेरह वर्ष वनवास के व्यतीत कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर चुके। अब उन्होंने अपना आधा राज्य वापस माँगा है। पाण्डवों की यह माँग पूर्णतया उचित है। उनका आधा राज्य उन्हें लौटा कर हमें कुरु-कुल की मर्यादा की रक्षा करनी चाहिये और कुल को नष्ट होने से बचाना चाहिये। इस विग्रह के फलस्वरूप जो रक्तपात होने की सम्भावना है उसकी स्थिति हमें पैदा नहीं करना चाहिये।"

भीष्म की गम्भीर वाणी सुनकर पाण्डवों के दूत बोले, "महामना भीष्म ने न्यायसंगत बात कही। धर्मराज युधिष्ठिर व्यर्थ युद्ध करना नहीं चाहते। उनके भाई भी उनके मत से सहमत हैं। वह प्रेम-भाव से इस समस्या को सुलझाना चाहते हैं।"

कर्ण बोला, "दादा भीष्म पाण्डवों से आतंकित हैं। यह जब देखो तब उन्हीं की वीरता का बखान करते रहते हैं। प्रतिज्ञानुसार उन्हें बारह वर्ष के लिये फिर वनवास को जाना चाहिये क्यों कि अज्ञातवास की अवधि पूर्ण होने से पूर्व अर्जुन को पहिचान लिया गया था। युधिष्ठिर यदि वास्तव में धर्मराज हैं तो उन्हें अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनी चाहिये। बारह वर्ष पश्चात लौटने पर महाराज दुर्योधन निश्चय ही उन्हें

अपनी शरण में स्थान देंगे। उस समय मैं भी महाराज दुर्योधन से उन्हें शरण में लेने के लिये प्रार्थना करूँगा।"

कर्ण की बात सुनकर भीष्म सरोष बोले, "कर्ण ! तुम कुरु-कुल के सर्वनाश का नाटक देखने के लिये कटिबद्ध हो। उस दिन विराट-नगरी में अर्जुन के सामने दो बार पीठ दिखाकर भागते तुम्हें लज्जा नहीं आई। तुम जैसे परामर्शदाताओं ने ही दुर्योधन की मति भ्रष्ट कर दी है। तुम कुरु-कुल के विनाश का काण्ड रच रहे हो।"

कृप, विदुर और द्रोण ने भी भीष्म के मत का समर्थन किया। धृतराष्ट्र ने सभी के मत एक ओर देख कर उस समय बात को टालना ही उचित समझा। उन्हें ज्ञात था कि दुर्योधन पाण्डवों को आधा राज्य लौटाने के पक्ष में नहीं है। वह बोले, "दादा भीष्म के आदेशानुसार हमें संजय को संधि-सन्देश लेकर पाण्डवों के पास भेजना चाहिये। आशा है संजय समस्या को सुलझा कर लौटेगा।"

संजय ने विराट-नगर में जाकर युधिष्ठिर से भेंट की, परन्तु बातें कुछ ऐसी की कि कोई परिणाम न निकल पाया। उसकी सब बातें निरर्थक सिद्ध हुई क्यों कि उनमे कोई तत्वपूर्ण बात नहीं थी।

धर्मराज युधिष्ठिर यहाँ तक झुके कि उन्होंने केवल पाँच गांवों के मिल जाने पर ही सन्तोष व्यक्त किया। वह संजय से बोले, "हम कुरु-कुल का विनाश नहीं चाहते। हम राज्यलोलुप नहीं हैं। अपने निर्वाह के लिये हमें यदि केवल पाँच गांव मिल जाये तो हम उन्हीं को लेकर सन्तोष कर लेंगे।"

पाण्डवों का प्रस्ताव लेकर संजय हस्तिनापुर पहुँचा तो उसे सुनकर दुर्योधन आग हो उठा। वह क्रोधपूर्ण वाणी में बोला, "पाँच गांव तो क्या मैं बिना युद्ध के पाण्डवों को सूई की नोक के बराबर भी भूमि देने को उद्यत नहीं हूं। मैं उन्हें कुरु-राज्य की तनिक सी भी भूमि नहीं दूंगा।"

धृतराष्ट्र दुर्योधन के सामने एक शब्द न बोल सके। दादा भीष्म, वही दादा भीष्म, जिन्होंने पांचाली-स्वयम्वर के पश्चात् कौरवों को पाण्डवों के लिये आधा राज्य छोड़ने पर विवश कर दिया था,अब अपनी आँखों के सामने यह अन्याय होते देख कर मौन रह गये। पितामह, अब नाम मात्र के पितामह रह गये थे। वह द्यूत-सभा में द्रोपदी का अपमान अपनी आँखों से देख कर बड़े-बड़े आँसू गिराने के अतिरिक्त और कुछ न कर सके थे। राजदण्ड धृतराष्ट्र के हाथों में था और वह दुर्योधन के हाथों की कठपुतली बन चुके थे। दुर्योधन के संकेत पर उन्हें नाचना पड़ता था।

सन्धि-प्रस्ताव के विफल होने पर दोनों पक्षों ने अपनी शक्ति का संचय करना आरम्भ कर दिया। पाण्डवों के पक्ष में सात अक्षौहिणी सेना एकत्रित हुई और कौरवों के पक्ष में ग्यारह अक्षौहिणी। कुल मिलाकर अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध के मैदान में उतरी।

धर्मराज युधिष्ठिर ने युद्ध को टालने के अन्तिम प्रयास स्वरूप श्रीकृष्ण को एक बार फिर हस्तिनापुर भेजा। उनकी इच्छा युद्ध करने की नहीं थी।

श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के यहाँ जा कर ठहरे। दुर्योधन ने उनके सम्मान में एक छल-भोज आयोजित किया. और चाहा कि उन्हें बन्दी बना ले,परन्तु श्रीकृष्ण न तो शल्य थे जो कौरवों के सत्कार-चमत्कार में फँस जाते और न इतने मूर्ख थे कि उन्हें बन्दी बना लिया जाता।

वह कौरवों की भरी सभा में खड़े होकर बोले, "दम्भी, लोभी और मूर्ख दुर्योधन ! मैं यहाँ कुरु-कुल को विनाश से बचाने के लिये आया था परन्तु तेरा इतना दुःसाहस कि तूने मुझे बन्दी बनाने का प्रयास किया। तेरा और तेरे-कुल का विनाश तुम्हारे शीर्ष पर मँडरा रहा है।

पाण्डु-पुत्र भीम ने तेरी वह जंघा, जिस पर तूने आज से तेरह वर्ष

पूर्व पांचाली को बिठाने के लिये कहा था, तोड़कर तेरा रक्तपान करने की प्रतिज्ञा न की होती तो आज तेरे विनाश का दिन आगया था। अच्छा होता यदि भीम ने वह व्रत न लिया होता और आज तेरे विनाश से कुरु-कुल नष्ट होने से बच जाता, परन्तु भवितव्यता को कोई नहीं टाल सकता। तुम्हें विनाश के गर्त में गिरना है तो गिरो। तुम्हारा अन्त समय निकट आ गया है। अब विधाता भी तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते।"

कृष्ण की गम्भीर वाणी सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। भीष्म, कृप और द्रोण इत्यादि कृष्ण के कोप को देख कर भयभीत हो उठे। उनके बदन थर-थर कांप रहे थे।

कृष्ण खड़े हो कर बोले, "मैं इस अधर्मियों की सभा में अब एक क्षण भी ठहरना अपना अपमान समझता हूँ। कौरव-कुल आज से अपने विनाश की घड़ियाँ गिननी आरम्भ करे। आज से सातवें दिन पाण्डवों की सेना कुरुक्षेत्र के मैदान में आजायगी।" यह कह कर श्रीकृष्ण सभा-भवन से चल दिये। किसी ने श्रीकृष्ण के सामने एक शब्द भी उच्चारण करने का साहस न किया।

श्रीकृष्ण महात्मा विदुर के घर पहुँचे और उन्हें आज का समाचार देकर प्रस्थान किया। चलते समय माता कुन्ती को श्रीकृष्ण ने सादर प्रणाम करके कहा, "माता कुन्ती! धर्मराज युधिष्ठिर ने युद्ध को टालने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु कौरवों के शीर्ष पर मृत्यु मंडरा रही है। काल इन्हें ग्रसने के लिये अट्टहास कर रहा है। मुझे खेद है कि अब इन्हें कोई नहीं बचा सकता।"

कृष्ण की गम्भीर वाणी सुनकर माता कुन्ती के नेत्रों से अश्रु-जल बरस पड़ा। वह कातर हो उठी। इस दुर्भाग्यपूर्ण समाचार को प्राप्त कर उनका हृदय विदीर्ण हो गया।

महाभारत का भीषण संग्राम टाले न टल सका। युद्ध का श्रीगणेश

हो गया। कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव-पाण्डवों की सेनायें आमने-सामन आकर डट गईं। भारत के प्रायः सभी राजाओं ने इस महायुद्ध में भाग लिया। देश के वे सभी युवक जिन में अपना जौहर दिखाने की ठनक थी, किसी-न-किसी पक्ष में आकर सम्मिलित हो गये। भारतीय राजे पारस्परिक वैमनस्य निकालने के लिये अपने शत्रुओं के विपक्षी-दल में जा मिले।

कौरव-सेना के सेनापति दादा भीष्म बने और पाण्डव-सेना के महाबली भीम। दोनों सेनापतियों ने अपनी-अपनी मोर्चेबन्दी की और सैनिक व्यूह-रचना आरम्भ कर दी।

दादा भीष्म ने घोषणा की, "जब तक युद्ध मेरे सेनापतित्व में होगा, धर्म-युद्ध होगा। मेरे सेनापतित्व-काल में यदि किसी ने अधर्म-युद्ध किया तो मैं युद्ध से प्रथक हो जाऊँगा। मैं अधर्म-युद्ध को एक क्षण के लिये भी सहन नहीं करूंगा।"

युद्ध की पूर्ण तय्यारी के पश्चात् वीरों ने शंखनाद किया। मारू बाजे की ध्वनि द्विगुणित हो उठी। रणभेरी बजी और रणभूमि का वायुमण्डल उससे भर गया।

अर्जुन कृष्ण से बोले, "कृष्ण! मेरा रथ ऐसे स्थान पर ले चलो जहाँ से मैं पक्ष और विपक्ष, दोनों की सेनाओं और उनके वीरों को देख सकूँ।"

श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ घुमाकर एक ऊँचे टीले पर ले जाकर खड़ा कर दिया। वहाँ से दोनों पक्ष स्पष्ट दिखाई देते थे। श्रीकृष्ण कौरवों की ओर संकेत करके बोले, "अर्जुन! तुम्हें इन सब को यमपुरी पहुंचाना है। इस ग्यारह अक्षौहिणी दल में से एक भी सैनिक बचने न पाये, यह ध्यान रखना, वरना अधर्म की कालिमा का वही धब्बा भारत माता के मस्तक का कलंक बना रहेगा। उसे मिटाने के लिये फिर महाभारत की रचना करनी होगी।"

अर्जुन के हृदय का उत्साह सामने खड़े अपने पारिवारिक जनों को देख कर क्षीण हो गया। उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बह चली। वह विह्वल हो उठे।

कृष्ण मुस्कराकर बोले, "अर्जुन! कौरवों की विशाल सेना को देख कर भयभीत हो उठे? क्या तुम्हें अपने बाहु बल पर विश्वास नहीं रहा?"

अर्जुन बोले, "कृष्ण! आप रथ को लौटा लें। मैं युद्ध नहीं करूंगा। भय मैं काल से भी नहीं खाता, परन्तु ये लोग, जो मेरे सामने खड़े हैं, इन्हें मार कर राज्य-श्री का उपभोग करना व्यर्थ होगा। राज्य जैसी तुच्छ वस्तु के लिये क्या दादा भीष्म का संहार करूं, गुरुदेव द्रोण के प्राण लूं, मामा शल्य पर प्रहार करूं, यह मुझसे कदापि न होगा। आप रथ वापस ले चलें। मुझे ऐसा राज्य नहीं चाहिये।"

अर्जुन की बात सुन कर कृष्ण गम्भीर हो उठे। वह बोले, "अर्जुन! आत्मा अमर है। तुम केवल निमित्त मात्र हो। कर्त्ता और है। ये जो सम्बन्ध तुम इन सब से जोड़ रहे हो, कृत्रिम हैं, असत्य हैं। केवल धर्म सत्य है। तुम यह युद्ध राज्य-श्री प्राप्त करने के लिये नहीं,धर्म की रक्षा के लिये कर रहे हो। आत्मा अमर है। वह कभी नहीं मरती। उसे कोई नहीं मार सकता।"

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का महान् संदेश दिया। कर्म-योग की व्याख्या की। उसे सुन कर अर्जुन ने नीचे रखा हुआ अपना गाण्डीव उठाया और उसकी प्रत्यंचा को पांच बार टंकार कर कहा, "कृष्ण! आज इस अवसर पर आप न होते तो क्या आप की सेना अर्जुन को अर्जुन बना पाती? रथ आगे बढ़ाइये। आपने मेरी आत्मा का अन्धकार दूर कर दिया। मैं युद्ध करूंगा और अधर्म का विनाश करके ही श्वांस लूंगा।"

उसी समय धर्मराज युधिष्ठिर अपने रथ से उतर कर खाली हाथ

कौरव-पक्ष की ओर वढ़ चले । उन्हें देख कौरव-पक्ष ने अनुमान लगाया कि युधिष्ठिर उनकी शक्ति से भयभीत होकर क्षमा-याचना करने के लिये आ रहे हैं । उनके पक्ष ने उन्हें देखकर हर्ष-ध्वनि की ।

धर्मराज युधिष्ठिर सीधे अपने गुरुजन भीष्म, कृप, द्रोण और शल्य के पास पहुंचे और उनके चरण छू कर उनका आशीर्वाद ग्रहण किया । गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त कर युधिष्ठिर अपने रथ पर जाकर वैठ गये । रणभेरी वज उठी और युद्ध आरम्भ हो गया ।

अर्जुन ने वाणों की वर्षा कर गुरुजनों को प्रणाम किया । अपने चरणों के पास गिरे अर्जुन के वाणों को देख कर गुरुजनों की आत्मा प्रसन्न हो उठी । उनकी देह कौरवों के पक्ष में थी, परन्तु आत्मा पाण्डवों के साथ ।

घमासान युद्ध आरम्भ हुआ । लोहे-से-लोहा वजने लगा । शवों पर शव पड़ने लगे । रुधिर की धारा वह चली । महावली भीम जिधर भी निकल जाते थे मैदान साफ़ होता चला जाता था । भीष्म और अर्जुन का जम कर युद्ध हो रहा था । दोनों महारथी आमने सामने डटे हुए थे ।

अर्जुन युद्ध करने दूसरी दिशा में मुड़े तो भीष्म ने पाण्डव-सेना का बुरी तरह संहार करना, आरम्भ कर दिया । यह देख कर अभिनन्यु विजली की तरह दादा भीष्म पर टूट पड़ा और देखते-ही-देखते उसने भीष्म के दस अंग-रक्षकों का संहार कर दिया । अभिमन्यु ने एक ही वाण से दादा भीष्म के रथ की उस ध्वजा को, जिसे गिराने का साहस आज तक कोई नहीं कर सका था, काट कर भूमि पर गिरा दिया ।

अभिमन्यु के पराक्रम को देखकर महावली भीम की छाती फूल उठी । उन्होंने 'वाह-वाह' की ध्वनि के साथ उत्साहपूर्वक शख-नाद किया । महात्मा भीष्म भी अभिमन्यु के रण-कौशल पर मुग्ध हो उठे ।

थे। उन्होंने मुक्त-कंठ से कहा, "शाबाश! अभिमन्यु शाबाश! तुम सचमुच अर्जुन के साक्षात अवतार हो।" परन्तु साथ ही उन्होंने लज्जा का भी अनुभव किया। उन्होंने अभिमन्यु पर तीरों की भयंकर वर्षा की। यह देखकर भीम, विराट, धृष्टद्युम्न और सात्यिकि अभिमन्यु की रक्षा के लिये आ गये। भीष्म ने क्रोधित होकर भीम के रथ की ध्वजा को काट गिराया। यह देखकर वह क्रोध से उन्मत्त हो उठे और गदा लेकर भीष्म की ओर दौड़ पड़े। भीम ने एक ही वार से भीष्म के रथ को चकनाचूर कर दिया। दूसरी ओर युवराज उत्तर के हाथी ने शल्य के घोड़ों का विध्वंस कर दिया। शल्य ने कृतवर्मा के रथ पर चढ़कर अपने प्राणों की रक्षा की।

प्रथम दिन घमासान युद्ध हुआ। सूर्य के अस्त होते ही शांति-बिगुल बज गया। दोनों ओर की सेनायें अपने-अपने शिविरों को चली गईं।

६

रात्रि को दोनों ओर शिविरों में दूसरे दिन के युद्ध का कार्यक्रम निश्चित किया जाने लगा। श्रीकृष्ण ने दूसरे दिन के प्रधान सेनापति पद् के लिये महारथी धृष्टद्युम्न का नाम प्रस्तुत किया। धर्मराज युधिष्ठिर ने इसका अनुमोदन किया। धृष्टद्युम्न दूसरे दिन के प्रधान सेनापति घोषित किये गये। महारथी भीम ने धृष्टद्युम्न को सेना की स्थिति का ज्ञान कराया। धृष्टद्युम्न ने प्रसन्नतापूर्वक प्रधान सेनापति का भार संभाला। इसके पश्चात सभा विसर्जित हुई और सब सोने के लिये चले गये।

अर्धरात्रि के पश्चात् व्यूह-रचना का कार्य प्रारम्भ हुआ। धृष्टद्युम्न ने दुर्भेद्य व्यूह की रचना कराई। व्यूह-रचना कराकर धृष्टद्युम्न ने सेना का निरीक्षण किया और व्यूह के चारो ओर घूमकर सम्पूर्ण स्थिति का अध्ययन किया।

कौरव रात्रि को शराब पीकर आनन्दपूर्वक सोये और दुर्योधन की प्रातःकाल आँखें खुलीं। उसने पाण्डव-सेना को दुर्भेद्य व्यूह के रूप में अपने समक्ष मैदान में देखा तो उसके होश उड़ गये और वह हड़बड़ाया हुआ सीधा दादा भीष्म के पास जाकर बोला, "दादा! आप क्या कर रहे हैं? पाण्डवों ने तो अपना व्यूह रच लिया।"

भीष्म ने भी एक व्यूह की रचना कर अपनी सेना को युद्ध के लिये तय्यार कर लिया था। निश्चित समय पर रण-भेरी का नाद सुनाई दिया। आज भीष्म की अंग-रक्षा के लिये दुर्योधन, द्रोण, शल्य और जयद्रथ मैदान में उतरे।

भीष्म ने अद्भुत रण-कौशल का प्रदर्शन किया। जब अर्जुन ने देखा कि उनकी सेना त्रस्त हो उठी है तो वह सब ओर से दृष्टि हटाकर

भीष्म के सामने में आ गये। अर्जुन के समक्ष आते ही भीष्म का समस्त रण-कौशल समाप्त हो गया। भीष्म ने झुंझलाकर कृष्ण पर तीर छोड़ा। कृष्ण को उस तीर ने घायल कर दिया। यह देखकर अर्जुन के क्रोध का पारवार न रहा। उन्होंने ऐसे तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की कि कौरव-सेना गाजर-मूली के समान कट-कटकर गिरने लगी। अर्जुन ने भीष्म के सारथी और घोड़ों को भी यमपुरी पहुचा दिया। भीष्म बिना रथ के निराधार खड़े रह गये।

दूसरी ओर धृष्टद्युम्न और द्रोण का युद्ध हो रहा था। भीम कलिंगराज तथा उनके दोनों पुत्रों से युद्ध कर रहे थे। भीम ने कलिंगराज के दोनों पुत्रों को धराशायी कर उसकी सेना को ध्वस्त किया। यह देखकर भीष्म उनकी सहायता के लिये दौड़ पड़े। धृष्टद्युम्न और सात्यिकी भी भीम की सहायता को जा पहुँचे। उनके वहाँ पहुंचने से पूर्व ही भीम ने कलिंगराज को समाप्त कर दिया।

भीष्म ने भीम पर तीरों से प्रहार किया। भीम का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ था। उसने लौटकर भीष्म के सारथी पर गदा से प्रहार किया। भीष्म के रथ के घोड़े भयभीत होकर भाग खड़े हुए। पाण्डवों की विजयपताका फहरा उठी। महाबली भीम की गदा ने युद्ध-भूमि में कुहराम मचा दिया। वह जिधर से भी निकल गये, कौरवों के शव बिछते चले गये।

मध्यान्ह के पश्चात अभिमन्यु और भीष्म का भीषण युद्ध हुआ। इस युद्ध में दुर्योधन के पुत्र लक्ष्मण का बदन छलनी हो गया। यह देखकर दुर्योधन उसकी रक्षा के लिये वहाँ जा पहुँचा। कृष्ण की दृष्टि उधर गई तो उन्होंने भी अपना रथ उसी दिशा मे मोड़ दिया। अर्जुन के तीरों की बौछार ने मैदान खाली कर दिया। कौरव-सेना भाग खड़ी हुई। भीष्म ने सेना को रोकने का बहुत प्रयास किया परन्तु वह रुकी नहीं। केवल भीष्म और द्रोण ही मैदान में खड़े रह गये

भीष्म ने मुक्त-कंठ से अर्जुन के रण-कौशल की सराहना की। सूर्यास्त होने पर शांति-बिगुल बजा दिया गया। पाण्डव-सेना भी अपने शिविर को लौट गई।

आज का मैदान पाण्डव-पक्ष के हाथ रहा। कौरव-पक्ष पर आतंक और उदासी छा गई। दुर्योधन हताश हो गया। उसे लगा कि भीष्म जान-बूझ कर युद्ध नहीं कर रहे हैं।

रात्रि को श्रीकृष्ण ने फिर सभा बुलाई और कार्यक्रम निश्चित करके उन्होंने अपने प्रमुख सेनापतियों से आगामी दिन के युद्ध के विषय में परामर्श किया।

अर्ध-रात्री में उठकर पाण्डवों ने अपनी सेना के व्यूह की रचना की और तीसरे दिन के युद्ध के लिये उद्यत हो गये। कौरवों ने भी अपनी सेना की व्यूह-रचना की। निश्चित समय पर युद्ध प्रारम्भ हो गया।

तीसरे दिन भीष्म ने,प्रारम्भ से ही, युद्ध इतनी कुशलतापूर्वक संचालित किया कि पाण्डवों के पैर उखड़ गये। भीम यह देखकर सिंह के समान गरज उठे। भीम का नाद सुनकर पाण्डवों के उखड़ते हुए पैर फिर जम गये। भीम क्रोध में भरकर कौरव-दल पर टूट पड़े। उनका आगे बढ़ना था कि सेना उनके पीछे-पीछे अपना जौहर दिखाने लगी और उसने कौरव-दल के होश उड़ा दिये। कौरव-दल में हाहाकार मच गया। उनकी सेना पीठ दिखाकर भाग खड़ी हुई। द्रोण ने अपनी सेना को रोकने का निष्फल प्रयास किया। पाण्डव-दल के हर्ष-नाद से वायु-मण्डल आच्छादित हो गया।

पाण्डव-दल के हर्ष-नाद को सुनकर दुर्योधन का दिल दहल गया। उसने देखा हर दिशा में कौरवों की हार हो रही थी। कौरव-सेना मैदान छोड़कर भाग रही थी।

दुर्योधन क्रोधित होकर दादा भीष्म के पास पहुंचा और उनकी भर्त्सना करके बोला, "पितामह ! यदि आपको इसी प्रकार पक्षपातपूर्ण

युद्ध करना था तो मुझे पहले बता देना चाहिये था। मुझे ज्ञात होता कि आप युद्ध में मुझे धोखा देंगे तो मैं कुछ और प्रबन्ध करता। कर्ण आपके ही कारण युद्ध मे भाग नही ले रहा है।"

दुर्योधन की भर्त्सना सुनकर भीष्म क्रोधित होकर बोले, "दुर्योधन मैं प्राण-पण से युद्ध कर रहा हूं। तुम्हारी विजय नही हो रही, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। धर्म के सामने अधर्म की कभी विजय नही हो सकती। मैं विधाता के विधान को नही बदल सकता। मुझ मे जितनी शक्ति और रण-कौशल है मैं उस सबका प्रयोग कर रहा हूँ और करूंगा। यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है तो तुम कर्ण को सेनापति बना सकते हो।"

युद्ध फिर भयंकर हो उठा। भीष्म के तीरों से पाण्डव-दल काई की तरह फट गया। मैदान खाली होने लगा। दादा भीष्म ने एक बार फिर अपना रण-कौशल प्रदर्शित किया।

भीष्म का विनाशकारी युद्ध देखकर श्री कृष्ण चिन्तित हो उठे। वह अर्जुन से बोले, "यह समय यहाँ नष्ट करने का नहीं है। भीष्म के भीषण प्रहारों से पाण्डव-सेना भाग रही है।" यह कहकर कृष्ण ने अर्जुन का रथ भीष्म की ओर मोड़ दिया और कुछ ही क्षणों में अर्जुन का रथ दादा भीष्म के सामने पहुंच गया।

अर्जुन ने दूर से ही पितामह को ललकारा, परन्तु आज भीष्म की प्रखर बाण-वर्षा ने अर्जुन के भी छक्के छुड़ा दिये। यह देखकर कृष्ण की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने सोचा कि भीष्म आज पाण्डव-सेना का समूल विध्वंश कर डालेंगे। वह अपनी शस्त्र न धारण करने की प्रतिज्ञा को भूल गये। उन्होने अपना सुदर्शन-चक्र उठा लिया।

कृष्ण के चक्र उठाते ही कौरव-सेना में कुहराम मच गया। कृष्ण को सुदर्शन संभालते देख कर भीष्म ने धनुष-बाण नीचे रख, वह

सहर्ष बोले, "कृष्ण ! आओ,मेरा संहार करो। आपके हाथ से मरकर शांति प्राप्त होगी। आज मेरी यही प्रतिज्ञा थी कि आपसे अस्त्र उठवा कर रहूँगा।"

कृष्ण सक्रोध बोले, "मेरी प्रतिज्ञा को देखते हो दादा भीष्म ! अपने अधर्म-युद्ध को नहीं देखते। कौरवों के जिस अन्न को खाने की दुहाई देकर आप अधर्म की रक्षा में युद्ध कर रहे हैं, क्या वह अन्न पाण्डवों का नहीं है ? क्या पाण्डव आपके नहीं हैं ? अधर्म की बढ़ती हुई शक्ति को कृष्ण सहन नहीं कर सकता। कौरव-राज्य में रहकर अधर्म आपके हृदय में बस गया है। जब पांचाली का भरी सभा में अपमान हुआ था तो आपकी यह वीरता और धर्मपरायणता कहाँ गई थी ? जब दुर्योधन ने पाण्डवों को सूई की नोंक के बराबर भी भूमि देने से इन्कार कर दिया था तो आपकी इस प्रखर युद्ध-विद्या को क्या हो गया था ? आज आप अपना रण-कौशल दिखाने आये हैं और वह भी अपने इन बच्चों पर। धिक्कार है आपके इस रण-कौशल और पराक्रम को। अधर्म पर स्वयं चल रहे हो और मेरे वचन की दुहाई देते हो। धर्म की रक्षा मेरी धर्म है, धर्म की रक्षा मेरी प्रतिज्ञा है।"

कृष्ण की गम्भीर वाणी सुनकर दादा भीष्म की गर्दन झुक गई। उन्हें अपनी वीरता पर ग्लानि हो उठी। उन्होंने अपने मन में सोचा कि वास्तव में वह जो कुछ कर रहे हैं वह अन्यायपूर्ण है। उन्होंने हस्तिना-पुर-राज्य का जो अन्न खाया था वह केवल कौरवों का ही नहीं था। जिस राज्य के लिये उन्होंने अपना सर्वस्व अर्पण किया क्या उसमें भी उनके लिये अन्न का प्रश्न उठता।

भीष्म को आज हार्दिक पश्चाताप हुआ। उनकी जिन आँखों ने पांचाली का अपमान देखा था, उन्हें उसी समय फूट जाना चाहिये था। उनके जिन कानों ने दुर्योधन के वे अन्यायपूर्ण शब्द सुने, उनकी श्रवण-शक्ति उसी समय नष्ट हो जानी चाहिये थी। उन्हें पाण्डवों के विरुद्ध

शस्त्र ग्रहण नहीं करने चाहिये थे। उनका व्यक्तित्व आत्मग्लानि से दब गया। वह कृष्ण की बात का कोई उत्तर न दे सके।

कृष्ण घन-गर्जन के समान गम्भीर वाणी में बोले, "बोलिये पितामह! मौन क्यों हैं? आप किसका नमक खारहे हैं? क्या वह आपका अपना नमक नहीं है? क्या आप महाराज शान्तनु के पुत्र नहीं हैं? क्या आपने चित्रांगद और विचित्रवीर्य को नहीं पाला? क्या आपने पाण्डु और धृतराष्ट्र का पालन-पोषण और संरक्षण नहीं किया? यह सब करनेवाला इस परिवार का पुर्खा आज कौरवों का नमक खाने की दुहाई देता है और उनकी ओर से रथ पर बैठा अपनी सन्तान पर शस्त्र-वर्षा कर रहा है। यह कितना बड़ा अधर्मपूर्ण और अनुत्तरदायित्व कार्य है?" यह कहकर श्रीकृष्ण अट्टहास कर उठे। उनके हास्य से सम्पूर्ण वायुमण्डल दहल उठा। कृष्ण फिर गम्भीर वाणी में बोले, "धर्म का ध्वंस करनेवाले अन्यायी और विधर्मी को बढ़ते देखकर कृष्ण का सुदर्शन चक्र स्वयं ऊपर उठ जाता है दादा! आपके वाणों को तरकश में रखाकर सुदर्शन चक्र स्वयं वापस लौट आयेगा। आप चिन्ता न करें। सुदर्शनचक्र कभी किसी अधर्म को सहन नहीं करेगा।"

कृष्ण जाकर अर्जुन के रथ पर बैठ गये। अर्जुन ने गाण्डीव उठाकर बाण-वर्षा करनी प्रारम्भ कर दी। भीष्म अब युद्ध मे उत्साह न ले सके। उनका उत्साह कृष्ण ने भग कर दिया था। उनका हृदय आत्मग्लानि से भर गया था।

अर्जुन के प्रखर बाणों की मार से शत्रु-सेना में भगदड़ मच गई। अनेकों कौरव-सैनिक इस भगदड़ में कुचलकर मर गये। कौरव-पक्ष में हाहाकार मच गया। अर्जुन के तीरों ने शत्रुओं का चुन-चुन कर संहार करना प्रारम्भ कर दिया। भीम की गदा ने शत्रुओ पर भीषण प्रहार किया।

सूर्यास्त का समय होगया था। कृष्ण मुस्कराकर बोले, "

शांति का बिगुल बजवाइये और मेरी प्रतिज्ञा भंग होने की दुहाई देते हुए अपने अन्नदाताओं के शिविर को लौटिये।"

भीष्म लज्जित होकर बोले, "कृष्ण ! अब और लज्जित न करो। कुरु-कुल की मर्यादा को भंग करनेवाला अन्य कोई नहीं, मैं हूं। मैंने अधर्म को सहन किया। मुझ से बड़ा पापी अन्य कोई नहीं है। मेरे इस अधर्म-कार्य का प्रायश्चित्त मृत्यु के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। मुझे अब जीने की लेशमात्र भी इच्छा नहीं है।"

"पितामह ! आप बुरा न मानें तो इस महाभारत का दोषी मैं आपको, आचार्य द्रोण, और मामा शल्य को मानता हूं। आप तीनों यदि दुर्योधन के अधर्म-कार्य में साथ न देते तो वह पाण्डवों से लड़ने का साहस न करता और यह भयंकर नर-संहार टल जाता। आप तीनों के ही निकट पाण्डव और कौरव समान हैं। आपको युद्ध में भाग लेना शोभा नहीं देता।"

दोनों पक्षों की सेनायें अपने-अपने शिविरों को लौट गईं। युद्ध-समाप्ति का बिगुल बज चुका था।

चौथे दिन का युद्ध और भी भयंकर हुआ। भीष्म और अर्जुन का युद्ध देखने के लिये दोनों सैनिक-दल मौन होकर खड़े हो गये। दूसरी ओर अभिमन्यु, अश्वत्थामा और शल्य इत्यादि के दांत खट्टे कर रहा था। अभिमन्यु के हाथों अश्वत्थामा और शल्य को घायल होते देखकर दुर्योधन भी वहां जा पहुंचा। यह देखकर कृष्ण ने भी अपना रथ उधर मोड़ दिया। दोनों ओर से प्रलय के बादल मंडरा उठे। आकाश बाणों से आच्छादित हो गया। चमाचम तलवारें चमक रही थीं।

भीम का पुत्र घटोत्कच भगदत्त और मगधराज से लड़ रहा था। भीम घटोत्कच को अकेला देखकर वहां पहुंच गये। दुर्योधन ने भगदत्त को भीम की गदा के प्रहार से भूमि पर गिरते देखा तो वह उसकी सहायता के लिये दौड़ा। अभिमन्यु, सात्यकि और धृष्टद्युम्न भी महाबली

म को अकेला देख कर वहाँ जा पहुँचे। घमासान युद्ध आरम्भ
ा गया।

मगधराज ने अभिमन्यु की ओर अपने हाथी को बढ़ाया तो अभि-
मन्यु ने उसे एक ही तीर से मारकर भूमि पर गिरा दिया। तभी
भीम की गदा ने भगदत्त का संहार कर दिया। यह देखकर दुर्योधन
क्रोधावेश में भीम की सेना पर टूट पड़ा। दुर्योधन ने भीम पर तीर
छोड़ा और वह घायल हो गये। घायल होकर भीम की क्रोधाग्नि धधक
उठी। वह आंधी के समान शत्रुओं पर टूट पड़े। उन्होंने दुर्योधन तथा
शल्य को घायल कर दुर्योधन के सात भाइयों को यमपुरी पहुँचा
दिया।

भीष्म को आज दिन भर अर्जुन ने हिलने नहीं दिया। उनके हर
वाण को अर्जुन ने विफल किया। आज भीष्म के वाणों से पाण्डव-सेना
के एक भी वीर की क्षति नहीं हुई और सध्या समय का शांति-बिगुल
बज गया। दादा भीष्म आज के युद्ध में कोई पराक्रम न दिखा
सके।

पांचवें दिन भीष्म से लड़ने के लिये शिखंडी मैदान में आया।
द्रोण जानते थे कि भीष्म शिखंडी से नहीं लड़ेंगे, इसलिये वह स्वयं
शिखंडी से लड़ने लगे और लड़ते-लड़ते उसे दूसरी दिशा में ले गये।
शिखंडी के चलेजाने पर भीष्म अर्जुन से लड़ने लगे। अभिमन्यु लक्ष्मण
से भिड़े रहे थे और भीम दुर्योधन से। इसी प्रकार लड़ते-लड़ते सध्या
हो गई और युद्ध में कोई निर्णय न हो सका।

छटे दिन युद्ध में भीम ने दुर्योधन को घायल कर दिया। सातवें
दिन का युद्ध भी निर्णयात्मक न हुआ। आठवें दिन भीम ने दुर्योधन के
दस भाइयों को यमपुरी पहुँचाया।

अभी तक के युद्ध में विशेष क्षति कौरवों की ही हुई थी। रात्रि क
दुर्योधन ने अपने मित्रों की एक सभा की, जिसमें भीष्म, द्रोण,

इत्यादि को आमंत्रित्र नहीं किया गया। उनके स्थान पर आज कर्ण को बुलाया गया। दुर्योधन को अब यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि दादा भीष्म पाण्डवों की तरफदारी कर रहे हैं।

दुर्योधन ने स्पष्ट शब्दों मे पितामह की निन्दा की और उन्हीं को अपनी पराजय का दोषी ठहराया। दुर्योधन ने यहाँ तक कहा कि भीष्म पाण्डवों से मिलकर उनके साथ विश्वासघात कर रहे हैं। वह नहीं चाहते कि युद्ध में कौरवों की विजय हो।

कर्ण ने दुर्योधन की बात का समर्थन करते हुए कहा, "महाराज दुर्योधन ! आप दादा से कहिये कि वह अस्त्र त्याग दें। मैं उनके अस्त्र त्यागने पर ही समर में उतर सकता हूँ। तब देखना पाण्डवों की क्या दशा होती है।"

कर्ण की बातें दुर्योधन के हृदय में घर कर गई। वह अपनी नित्य प्रति की हार से व्याकुल हो उठा था। उसके बीस भाई रण में खेत रहे थे। उसका भगदत्त जैसा साथी युद्ध में काम आ चुका था। वह स्वयं भी घायल हो गया था। उसका छः अक्षौहिणी दल समाप्त हो चुका था। अब पाण्डवों और कौरवों की सैन्य-शक्ति लगभग समान हो गई थी। दुर्योधन का मन बहुत क्षुब्ध था। वह युद्ध की स्थिति से भयभीत हो उठा था।

दुर्योधन वहाँ से उठकर सीधा भीष्म के शिविर में पहुँचा। वह बोला, "पितामह ! आपकी पाण्डवों के प्रति ममता के कारण हमारी युद्ध-भूमि में नित्य पराजय हो रही है। आपने पाण्डवों को मारने की प्रतिज्ञा की थी, परन्तु आप उसे पूर्ण न कर सके। मेरी इच्छा है कि आप अब युद्ध से अवकाश गृहण कर कर्ण को युद्ध-भूमि में उतरने दें।"

भीष्म ने दुर्योधन की बात का कोई उत्तर न दिया। उनकी आत्मा को महान् कष्ट हुआ। यह सत्य था कि उनका प्रेम पाण्डवों पर था

…ु उन्होने युद्ध में विश्वासघात नही किया था। अर्जुन के समक्ष
…आगे न बढ़ सके और उनकी हार हुई, इसके लिये वह दोषी
…थे। उन्होंने अपनी शक्ति भर कुछ उठा नही रखा था।
भीष्म गम्भीर वाणी में बोले, "दुर्योधन दोष तुम्हारा नही है, दोष
…य का है। कल मेरे युद्ध का नवाँ दिन होगा। कल या तो मैं पाण्डवों
…समाप्त कर दूंगा, या स्वयं समाप्त हो जाऊँगा, परन्तु मरूँगा नहीं
…मी। सम्पूर्ण महाभारत को अपनी आँखों से देखकर प्राण-त्याग
…रूँगा और देखूंगा कि पाण्डवों के समक्ष तुम्हारा अन्य कौन सेनापति
…होगा जो नौ दिन तक ठहर पायेगा? तुम इस समय यहाँ से चले
…जाओ। मुझे सेना का सचालन करके कल के युद्ध की व्यवस्था
करनी है।"

दुर्योधन अपने मन मे भीष्म की प्रतिज्ञा को सुनकर आशा लिये
अपने शिविर को लौट गया। उसे हर्ष था कि वह इस प्रकार दादा को
उत्तेजित करके युद्ध को भयकर बना देने मे सफल हुआ।

कृष्ण गत तीन चार दिन से देख रहे थे कि जब शिखण्डी भीष्म
के सामने जाता था तो भीष्म उसपर वार नहीं करते थे। उन्होंने आज
रात्रि में फिर अपने चुने हुए वीरो की एक सभा की और धृष्टद्युम्न
से कहा, "धृष्टद्युम्न! आज रात्रि को तुम अपने अभेद्य-व्यूह की रचना
करो और उसके सिहद्वार पर शिखण्डी को रखो। उसके दोनो ओर
अभिमन्यु, भीम, नकुल, सहदेव, विराट, घटोत्कच, सात्यिकी और तुम
सब रहना। द्रोण, कृप, दुर्योधन इत्यादि जो कोई कौरव-योद्धा शिखंडी
के सामने आये उसे तुम लोग सम्भालना। किसी को शिखण्डी पर
आक्रमण करने का अवसर न देना। अर्जुन का रथ शिखण्डी के पीछे
रहेगा। भीष्म पितामह ने आज दुर्योधन से कल के युद्ध में पाण्डवों को
समाप्त करने या स्वयं मृत्यु को प्राप्त होने की प्रतिज्ञा की है। कल का
निर्णायक युद्ध होगा। महाभारत के युद्ध का निर्णय कल के युद्ध…

सामने आ जायेगा।"

सैनिक तय्यारियाँ उसी समय होनी आरम्भ हो गईं। रात्रि में श्रीकृष्ण ने एक क्षण के लिये भी विश्राम नहीं किया।

धृष्टद्युम्न सम्पूर्ण रात्रि भर चन्द्रमा की चाँदनी में अभेद्य-व्यूह की रचना में व्यस्त रहे। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर, विराट, सात्यिकी, अभिमन्यु और घटोत्कच भी वहीं डटे रहे। आज के व्यूह की रचना श्रीकृष्ण ने स्वयं अपनी देख-रेख में कराई। वह हर दिशा में निरीक्षण कर रहे थे। व्यूह में केवल एक ही प्रवेश-द्वार रखा गया था।

प्रात:काल भीष्म का रथ युद्ध-भूमि में आया तो उन्हें अपने सामने पाण्डवों के व्यूह के सिंहद्वार पर शिखण्डी खड़ा दिखाई दिया। उसे देखकर भीष्म समझ गये कि आज उनका अन्तिम दिन है। मृत्यु उनके शीर्ष पर मँडरा उठी। उनके मन ने कहा, "आज का सैन्य-संचालन स्वयं श्रीकृष्ण कर रहे हैं।"

युद्ध-प्रारम्भ होने का शंख-नाद हुआ। रणभेरी वज उठी। दुर्योधन ने व्यूह के सिंहद्वार पर शिखण्डी को खड़ा देखा तो वह हंसा और उस पर आक्रमण किया। भीम दुर्योधन को उस ओर वढ़ते देखकर उसकी ओर लपका और इतने जोर का प्रहार किया कि वह शिखण्डी की ओर वढ़ना भूलकर भीम से भिड़ गया। भीम दुर्योधन को धकेलता हुआ वहाँ से वहुत दूर दक्षिण-दिशा में ले गया।

शिखण्डी ने भीष्म पर आक्रमण किया तो द्रोण झपटकर भीष्म के सामने आ गये और उन्होंने शिखण्डी के तीर को वीच में ही काट कर शिखण्डी पर तीर छोड़ा। अर्जुन ने द्रोण के तीर को वीच में ही काट दिया। धृष्टद्युम्न ने उसी समय द्रोण पर भीषण आक्रमण किया। धृष्टद्युम्न के आक्रमण ने द्रोण को इतनी वुरी तरह से त्रस्त कर दिय कि उन्हें भीष्म का ध्यान भूलकर अपनी रक्षा की पड़ गई। धृष्टद्युम्न

द्रोण को वहाँ से लड़ता-लड़ता उत्तर-दक्षिण की ओर पर्याप्त दूरी पर ले गया।

शल्य शिखण्डी की ओर बढ़े तो सात्यिकी ने उन्हें आगे न बढ़ने दिया। वह उन्हें युद्ध करते हुए पूर्व दिशा की ओर ले गये। कृप ने देखा भीष्म अकेले रह गये। वह झपट कर उधर आये तो नकुल और सहदेव उनपर टूट पड़े। वे उनसे युद्ध करते हुए उन्हें पश्चिम दिशा की ओर ले गये। जयद्रथ की दृष्टि भीष्म की ओर गई तो उसने देखा कि भीष्म का एक भी अंग-रक्षक उनके पास नहीं रहा। उसने अपना रथ भीष्म की ओर बढ़ने के लिये दौड़ाया। अभिमन्यु ने जयद्रथ को उधर बढ़ते देखा तो उसने उसके दोनों घोड़ों और सारथी को मार गिराया। उसने उस-पर बाणों की इतनी भयंकर वर्षा कि उसे अपने आप को ही सम्भालना कठिन हो गया।

दादा भीष्म की सहायता के लिये एक भी अंग-रक्षक शेष न रहा। अवसर देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "अर्जुन ! भीष्म पर आक्रमण करो। इससे अच्छा अवसर फिर नहीं मिलेगा। यही समय है कुछ कर गुजरने का।"

उसी समय युधिष्ठिर भी वहाँ आ गये। युधिष्ठिर गम्भीर वाणी में बोले, "अर्जुन ! आज दादा को समाप्त करना होगा। दादा ने हमारे विपक्ष में अस्त्र ग्रहण करके अधर्म और अन्याय का पक्ष लिया है। हमने दादा का क्या अहित किया था जो इन्होंने हमारे विरुद्ध कौरवों का पक्ष लिया ? क्या कौरवों के ही समान हम इनकी सन्तान नहीं हैं ?"

कृष्ण और धर्मराज युधिष्ठिर का आदेश प्राप्त कर अर्जुन ने दादा भीष्म पर भीषण प्रहार किया। संध्या होते-होते भीष्म का वदन छलनी हो गया। उनका सारा वदन अर्जुन के बाणों से बिंध गया। सूर्यास्त तक दादा भीष्म पृथ्वी पर गिर पड़े। उनके बदन पर इतने बाण गुंथे थे कि बाणों की शय्या-सी बन गई थी। वह शर-शय्या पर

लेट गये।

भीष्म के गिरते ही कौरव-दल में हा-हाकार मच गया। युद्ध बन्द हो गया। कौरव, पाण्डव, दोनों ने आगे बढ़ कर भीष्मपितामह के चरण छुए और उनकी चरण-रज लेकर अपने मस्तकों पर लगाई। सभी के नेत्रों में जल भर आया।

भीष्म ने नेत्र खोलकर कहा, "बच्चो! मैं चाहता हूँ कि मेरी मृत्यु के साथ तुम दोनों का पारस्परिक मतभेद समाप्त हो जाये। मैं सूर्य उत्तरायण होने पर प्राण त्याग करूँगा!" फिर कुछ ठहरकर बोले, "बच्चो! मेरा सिर नीचे लटक रहा है। मुझे इससे कष्ट हो रहा है। इसे ऊपर उठा दो।"

यह सुनकर कौरव तुरन्त मखमली तकिये ले आये। भीष्म बोले, "मुझे ये तकिये नहीं चाहियें दुर्योधन! तीरों की शय्या पर सोनेवाला भीष्म मखमल के तकिये लगायेगा?" वह फिर अर्जुन की ओर देखकर बोले, "अर्जुन! मेरा सिर नीचे लटक रहा है बेटा! इसे ऊपर उठा दो।"

अर्जुन ने तुरन्त तरकश से दो तीर निकालकर छोड़े और दादा भीष्म का सिर ऊपर उठा दिया। उनका सिर उन दो तीरों पर टिक गया। दुर्योधन ने इसे भी अपना अपमान समझा।

भीष्म बोले, "बेटा मुझे प्यास लगी है।"

अर्जुन ने तभी एक तीर भूमि में मारा। भूमि से जल का फव्वारा निकल कर पानी दादा भीष्म के मुख पर आकर गिरा और उन्होंने अपनी प्यास शान्त की।

भीष्म गद्गद् होकर बोले, "बेटा अर्जुन! तेरे सरीखा धनुर्धर पृथ्वी पर पैदा नहीं हुआ। तुम्हें युद्ध-भूमि में कोई परास्त नहीं कर सकता। मुझे तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई परास्त नहीं कर सकता था।"

भीष्म दुर्योधन से बोले, "बेटा दुर्योधन! मेरी मृत्यु से ही यदि

७

दादा भीष्म के हताहत होने का शोक कौरव-दल में छा गया था। दुर्योधन यों भर्त्सना के रूप में पितामह से चाहे जो कुछ भी कह देता था, परन्तु वह जानता था कि भीष्म जैसा कोई अन्य महारथी उसके पक्ष में नहीं है। उनके रण-भूमि में गिरने से दुर्योधन के हाथ-पैर टूट गये। वह कुछ देर तो सोच ही न सका कि अब क्या करे।

दुर्योधन इसी शोक में डूबा बैठा था कि उसे सामने से कर्ण आता दिखाई दिया। दुर्योधन को अधीर देखकर वह उत्साहपूर्ण वाणी में बोला, "दुर्योधन ! तुम अधीर क्यों हो ? दादा भीष्म के रहते मैं शस्त्र नहीं उठा सका था। अब कल से तुम युद्ध में मेरा जौहर देखना। मुझे तुम पाण्डवों का काल समझना।"

कर्ण की उत्साहपूर्ण बातें सुनकर दुर्योधन के बैठते हुए दिल ने तनिक उभार लिया। डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। वह गद्-गद् होकर बोला, "भय्या कर्ण ! सच बात तो यह है कि मैंने पाण्डवों से युद्ध एक मात्र तुम्हारे ही बल पर ठाना है। हमारे वयोवृद्ध लोगों का हृदय पाण्डवों के साथ है, हमारे साथ नहीं। इनका हमारे पक्ष में युद्ध करना भी केवल दिखावा मात्र है। यह सब कुछ तुम भली प्रकार जानते हो। हमें अब कल के सेनापति का निश्चय कर लेना चाहिए।"

कर्ण बोला, "भीष्म के पश्चात सेनापति आचार्य द्रोण के अतिरिक्त अन्य कौन हो सकता है ?"

कर्ण की इस बात का सबने समर्थन किया।

द्रोण के सामने यह प्रस्ताव पहुंचा तो उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। वह बोले, "वत्स दुर्योधन ! मैं तुम लोगों का शिक्षण-कार्य करता रहा हूँ। युद्ध का अभ्यास मुझे नहीं है। फिर भी जब यह

भार तुमने मेरे सिर पर रखा है तो मैं इसे वहन करने को उद्यत हूँ। एक मात्र धृष्टद्युम्न को छोड़कर मैं समस्त पाण्डव-सेना के साथ लड़ सकता हूँ। उसके साथ मैं युद्ध नही कर सकता।"

दुर्योधन बोला, 'आचार्य ! आप किसी प्रकार युधिष्ठिर को जीवित पकड़ ले। मैं उन्हे मारना नही चाहता, क्योंकि उनके मरने पर अर्जुन प्रलयकारी रूप धारण कर लेगा।"

द्रोण बोले, "धर्मराज को जीवित पकड़ लाना सरल कार्य नही है। जब तक अर्जुन धर्मराज के पास छाया के समान लगा रहेगा तब तक उन्हें कोई छू भी नही सकता। हाँ, कि यदि तुम अर्जुन को किसी प्रकार युधिष्ठिर के पास से हटा लो तो सम्भव है कि मैं इस कार्य में सफल हो सकूँ।"

सुशर्मा बोला, "आचार्य ! यदि युधिष्ठिर को पकड़ने की चेष्टा करें तो हम लोग आज अर्जुन को ललकार कर युद्ध के लिये दूर ले जा सकते हैं।"

सुशर्मा की सलाह आचार्य को पसन्द आई। वह बोले, "यदि अर्जुन युधिष्ठिर से पृथक हो जाय तो मैं युधिष्ठिर को बन्दी बनाने का पूर्ण प्रयास करूंगा।"

आचार्य द्रोण के अन्तिम शब्द सुनकर दुर्योधन की आत्मा प्रसन्न हो गई। उसका हृदय उल्लास से भर गया। वह उन्मत्त होकर बोला, "आचार्य ! युद्ध में हमारी विजय होगी। कल महाबली कर्ण भी युद्ध-क्षेत्र मे आयेंगे।"

कौरवों की इस मंत्रणा का समाचार पाण्डवों के दूतों ने तुरन्त जाकर कृष्ण को दी। पाण्डवों की ओर से युद्ध-नीति का सचालन श्रीकृष्ण कर रहे थे।

कृष्ण ने निश्चय किया कि अर्जुन छाया के समान युधिष्ठिर के साथ रहेंगे। युधिष्ठिर को एक क्षण के लिये भी अकेला नहीं छोड़

जायेगा।

दूसरे दिन युद्ध प्रारम्भ हुआ। द्रोण नें व्यूह-रचना कर युद्ध प्रारम्भ किया। रण-भेरी वज उठी और योद्धा-गण अपने-अपने विपक्षियों पर टूट पड़े। घमासान युद्ध छिड़ गया।

आज कर्ण की पताका भी युद्ध-भूमि में फहरा रही थी। कर्ण के उत्साह को देखकर दुर्योधन भीष्म के अभाव को भूल गया। कर्ण को देखकर कौरव-सेना में भी नवीन उत्साह भर गया था। कर्ण और आचार्य द्रोण के जय-घोष से आकाश गूंज रहा था। कौरव-सेना आज नये सेनापति के संचालन में नये जोश से लड़ रही थी।

पाण्डव वीर वहुत सतर्कता से युद्ध कर रहे थे। उनके व्यूह के सिंहद्वार पर अर्जुन का रथ रखा था। कर्ण ने अर्जुन को देख कर दूर से ही ललकारा तो अर्जुन से उसके शब्द सहन न हो सके। अर्जुन ने क्रोध में भरकर एक ऐसा तीर छोड़ा जिससे कर्ण के रथ की ध्वाजा फटकर आकाश में उड़ गई।

द्रोण ने आज प्रलयंकारी युद्ध किया। उनके प्रखर वाणों की वर्षा से पाण्डव-सेना त्रस्त हो उठी। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। यह देख कर धर्मराज युधिष्ठिर कुछ प्रमुख वीरों के साथ द्रोण के सामने आ गये। भीम शल्य से युद्ध कर रहे थे और सात्यिकि कृतवर्मा से। भीम ने शल्य पर प्रहार किया तो वह मूर्छित होकर धराशायी हो गये। कौरव-सैनिक उन्हें उठाकर शिविर में ले गये।

द्रोण के वाणों से शूरसेन ने वीरगति पाई तो पाण्डव-दल में उदासी छा गई। यह देखकर युधिष्ठिर अकेले ही द्रोण से जूझ पड़े। द्रोण ने धर्म- राज को वाणों की वर्षा से घायल कर दिया।

उधर अर्जुन को सुशर्मा ने वुरी तरह घेर लिया था। आचार्य द्रोण अवसर देखकर युधिष्ठिर को वाँध लेना चाहते थे। यह देख कर कृष्ण अर्जुन से वोले, "अर्जुन ! मेरा हृदय व्याकुल हो उठा है। हमें

तुरन्त धर्मराज की सुधि लेनी चाहिये। कहीं ऐसा न हो कि कोई अनर्थ हो जाय। द्रोण धर्मराज को बन्दी बनाना चाहते हैं।"

कृष्ण ने अर्जुन का रथ तीव्र गति से युधिष्ठिर की ओर बढ़ा दिया। वह पलक मारते शत्रु-सेना को काटते-छांटते धर्मराज के पास जा पहुँचे। उन्होंने देखा द्रोण ने धर्मराज को बन्दी बनाने के लिये अपना पाप फैला दिया था और धर्मराज घायल होकर गिरने ही वाले थे।

अर्जुन ने दूर से ही एक तीर ऐसा छोड़ा कि द्रोण का पाप टुकड़े-टुकड़े हो गया। द्रोण खड़े के खड़े रह गये। तभी अर्जुन के बाण उनके चारों ओर मंडरा उठे। द्रोण अर्जुन के बाणों की वर्षा में फँस कर अपना मार्ग भूल गये।

दिवसावसान समीप था। युद्ध बन्द हो गया। योद्धा-गण अपने-अपने शिविरों को चले गये। द्रोण का निश्चय पूर्ण न हो सका।

द्रोण की आज की असफलता ने दुर्योधन को उदास कर दिया। द्रोण साहसपूर्ण वाणी में बोले, 'दुर्योधन! हतोत्साहित होने का कोई कारण नहीं है। मैंने कल ही तुमसे कहा था कि अर्जुन के रहते युधिष्ठिर को बन्दी बनाना कठिन है। अर्जुन के आने से मेरा प्रयास विफल हो गया। यदि अर्जुन कुछ देर और न आता तो मैंने युधिष्ठिर को पाप में बांध लिया होता। युद्ध के समय यदि अर्जुन को किसी प्रकार मेरे सामने से दूर ले जाया जा सके तो हमें सफलता मिल सकती है।"

यह सुनकर त्रिगर्तराज बोले, "मैं आज आपके सामने शपथ लेता हूँ कि कल अर्जुन से घोर युद्ध करके आपसे दूर ले जाऊंगा। कल या तो मैं ही नहीं रहूँगा या अर्जुन।"

पाण्डव-पक्ष में रात्रि को मन्त्रणा-सभा का आयोजन हुआ। उसमें दूसरे दिन की युद्ध-नीति पर विचार किया गया। तभी उन्हें उनके दूतों ने कौरवों के निश्चय की सूचना दी।

उषा ने रात्रि के अन्धकार को भेदकर दर्शन दिये। पाण्डव-सेना मैदान में उतर आई। कौरव-सेना भी उसके सामने आ डटी।

रण-भेरी बजी और त्रिगर्तराज ने अर्जुन को ललकारा। अर्जुन युधिष्ठिर से बोले, "धर्मराज! सत्यजित आपकी रक्षा में रहेगा। यदि सत्यजित वीरगति को प्राप्त हो जाय तो आप तुरन्त युद्धस्थल से हट जाना। द्रोण से अकेले लड़ने का प्रयास न करना, यह मेरी आप से सानुरोध प्रार्थना है, अन्यथा बहुत बड़ा अनर्थ हो जायगा। मुझे त्रिगर्त-राज ने ललकारा है। मुझे आज इसे यमपुरी पहुँचाना ही होगा। आपके युद्धस्थल से हट जाने पर द्रोण का कार्यक्रम स्वयं ही विफल हो जायगा।

त्रिगर्तराज अर्जुन को ललकार कर इतनी दूर निकल गया कि जिससे वह युधिष्ठिर की रक्षा के लिये न आ सकें। अर्जुन श्री कृष्ण से बोले, "कृष्ण! मालूम देता है त्रिगर्तराज के सिर पर काल मँडरा रहा है। मैं आज इसे जीवित नहीं छोड़ूगा।"

कृष्ण ने रथ ले जाकर त्रिगर्तराज के सामने खड़ा कर दिया। अर्जुन की सेना ने त्रिगर्तराज की व्यूह-रचना को छिन्न-भिन्न कर दिया। उसकी सेना भाग खड़ी हुई और वह अकेला अर्जुन के सामने खड़ा रह गया।

उसे परास्त कर अर्जुन युधिष्ठिर की ओर बढ़े, परन्तु बीच में दुर्योधन असंख्य सेना लेकर आ गया। अर्जुन प्रलय के समान उस पर टूट पड़े। दुर्योधन की सेना काई की तरह फट गई। वह तनिक और आगे बढ़े तो भगदत्त से युद्ध करना पड़ा। भगदत्त ने अपने मस्त हाथी ऐरावत को अर्जुन के रथ की दिशा में छोड़ दिया।

कृष्ण ने तीव्र गति से रथ को बचा लिया और अर्जुन ने ऐरावत हाथी को मार गिराया। यह देखकर भगदत्त पागल की भांति अर्जुन पर टूट पड़ा। अर्जुन ने एक ऐसा बाण छोड़ा जिससे भगदत्त की

आँतें निकल कर बाहर आ गिरीं और वह यमलोक सिधार गया।

उधर द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर के अंग-रक्षकों पर भीषण प्रहार किया। द्रोण की बाण-वर्षा ने पाण्डव-सेना को व्याकुल कर दिया। द्रोण के इस रूप को देखकर युधिष्ठिर के अंगर-रक्षक भी आंधी के समान उन पर टूट पड़े। सत्यजित के बाणों ने द्रोण के रथ के घोड़ों को मारकर भूमि पर गिरा दिया। उनके सारथी को भी सत्यजित ने आहत कर दिया।

सत्यजित की वीरता को देखकर द्रोण आश्चर्यचकित रह गये। द्रोण ने अपनी प्रतिज्ञा को भंग होते देख कर सत्यजित पर अर्धचन्द्रास्त्र से प्रहार किया। इस प्रहार से सत्यजित मृत्यु को प्राप्त हुआ।

सत्यजित को गिरते देखकर धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध-भूमि से हट गये। युधिष्ठिर को अपने सामने न देख, द्रोण क्रोध से पागल हो उठे और पाण्डव-दल का बुरी तरह संहार करने लगे। उन्होंने कितने ही पांचालों को समाप्त कर दिया।

उसी समय अर्जुन वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने द्रोण का रौद्र-रूप देख कर कौरव-सेना का विध्वंस करना आरम्भ किया। अर्जुन के तीरों की मार ने मैदान खाली कर दिया। कौरव-सेना में भगदड़ मच गई। उनके सैनिक सिरों पर पैर रख कर भाग खड़े हुए।

लड़ते-लड़ते सूर्यास्त हो गया और शांति-शंख बज गया।

कौरव-दल की आज करारी हार हुई। भगदत्त की मृत्यु का शोक समस्त कौरव-दल पर छा गया और त्रिगर्तराज की पराजय ने तो उनके घुटने ही तोड़ दिये।

दुर्योधन बहुत हताश हुआ। उसकी सैन्य-शक्ति पाण्डवों से कम रह गई थी। उसकी निराशा का पारावार नहीं रहा था। उसके लगभग पचास से ऊपर भाई रण में खेत रहे थे। उसके बड़े-बड़े वीरों का विनाश हो चुका था। वह विह्वल होकर आचार्य द्रोण के शिविर,

जाकर बोला, "आचार्य ! यदि युद्ध का यही रूप रहा तो हमारी पराजय निश्चित है। आपकी पाण्डवों के प्रति ममता ही हमारे विनाश का मूल कारण है। यदि आपने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण न की तो मैं समझूंगा कि आप हमारे पक्ष की ओर से नहीं, पाण्डव-पक्ष के हित में युद्ध कर रहे हैं।"

दुर्योधन के ये वचन सुनकर आचार्य द्रोण मर्माहित हो उठे। वह क्रुद्ध होकर बोले, "दुर्योधन ! होश की बातें करो ! मेरे बाणों से आज सत्यजित की मृत्यु हुई। उसके पश्चात् धर्मराज युद्ध-भूमि से हट गये। नीतिकुशल कृष्ण उनके साथ हैं। उनकी नीति को समझना तुम्हारे लिये असम्भव है। तभी पराक्रमी अर्जुन त्रिगर्तों पर विजय प्राप्त कर वहां आ पहुंचा। क्या तुम मेरे साथ नहीं थे जो ऐसी बातें कर रहे हो ? मैंने अपनी करनी में क्या उठा रखा ? द्रोण मृत्यु को प्राप्त हो सकता है, विश्वासघात नहीं कर सकता।

मैं कल चक्र-व्यूह की रचना करूंगा। यदि कल कोई अर्जुन को यहां से दूर हटा कर लेगया तो निश्चय ही कल इस व्यूह में किसी पाण्डव-वीर का निधन होगा।"

उस दिन रात्रि भर द्रोण चक्रव्यूह की रचना कराते रहे। प्रातः काल होते ही दोनों सेनायें रण-भूमि में उतर आईं। आज अर्जुन को फिर चित्रगर्त और संसप्तकों ने ललकारा। अर्जुन उनसे लड़ते हुए बहुत दूर निकल गये।

इधर द्रोण द्वारा चक्रव्यूह की रचना का समाचार प्राप्त कर युधिष्ठिर चिंतित हो उठे। तभी उनके सामने अभिमन्यु आकर बोला, "धर्मराज ! चिन्तित न हों, मैं व्यूह-भेदन करना जानता हूं। मैं उससे बाहर निकलना नहीं जानता परन्तु जब व्यूह को भेद दूंगा तो बाहर निकलना कौन दुष्कर कार्य है ? मुझे आज्ञा हो तो मैं द्रोण के चक्रव्यूह का भेदन करूं।"

धर्मराज युधिष्ठिर ने अभिमन्यु को सेनापति-पद से विभूषित किया।

धर्मराज से आज्ञा प्राप्त कर अभिमन्यु उत्तरा से अन्तिम विदा लेने उसके शिविर में गया और सहर्ष बोला, "उत्तरा ! आज तुम्हारे पति को पाण्डव-दल का सेनापति बनने का अपूर्व सौभाग्य प्राप्त हुआ है। आचार्य ने पिताजी की अनुपस्थिति में चक्रव्यूह का रचना कर पाण्डवों पर विजय प्राप्त करने का स्वप्न देखा है। तुम देखना आज मैं आचार्य के संकल्प को किस प्रकार विफल बनाकर संध्या को शिविर में लौटता हूँ।"

उत्तरा अभिमन्यु की यह बात सुनकर भयभीत हो उठी। वह बोली, "प्राणनाथ ! आज मैंने बहुत बुरा स्वप्न देखा है। मैंने स्वप्न में देखा कि सात कौरवों ने मिलकर आपको छल-बल से हताहत कर डाला। आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप आज रणभूमि में न जायें।"

अभिमन्यु उत्तरा को छाती से लगाकर बोला, "प्राणाधिके ! वीर क्षत्राणी होकर यह तुम क्या कह रही हो ? यह पाण्डव-कुल की प्रतिष्ठा का प्रश्न है उत्तरे ! क्या तुम चाहती हो कि तुम्हारे पति का नाम कायरों की पंक्ति में लिखा जाय ?"

उत्तरा ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने पति को विदा दी। उनका हृदय बहुत व्याकुल था। उनके नेत्र बार-बार अश्रुओं से पूर्ण हो जाते थे।

उत्तरा से विदा लेकर अभिमन्यु अपनी माता सुभद्रा के पास गया और उनके चरण छूकर विदा ली।

उसके पश्चात् वह वहाँ से माता पांचाली के पास पहुँचा। पांचाली ने अभिमन्यु को छाती से लगा लिया और नेत्रों में आँसू भरकर बोलीं, "पाण्डव-कुल के सबसे छोटे वीर सेनानी ! कौरव-कुल का विध्वंस करो और हमारे हृदयों में जलने वाली प्रखर ज्वाला को शान्त करो। तुम्हारी कीर्ति अमर हो।"

अभिमन्यु ने समर-भूमि की ओर प्रस्थान किया तो उत्तरा के नेत्रों से अश्रुओं की धारा वह चली। उसने रात्रि में जो भयानक स्वप्न देखा था, वह साकार उसके नेत्रों की पुतलियों में उतर आया। उत्तरा का हृदय विदीर्ण हो उठा।

माता सुभद्रा ने शोकातुर उत्तरा को अपनी अंक में भर लिया। वह अश्रुपूर्ण नेत्रों से बोलीं, "वेटी उत्तरा! जिस प्रकार अभिमन्यु तेरा पति है उसी प्रकार मेरे भी कलेजे का टुकड़ा है। अभिमन्यु के प्राणों का मोह जितना तुझे है, उससे कम मुझे भी नहीं है। इस कठिन समय में क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का पालन करना ही हमारा धर्म है। अभिमन्यु विजय प्राप्त करके लौटे, हमें यही कामना करनी चाहिये।

शोकनिमग्न उत्तरा सकरुण वाणी में बोली, "मैं अपने कर्त्तव्य से अपरिचित नहीं हूँ माताजी! परन्तु रात्रि को जो स्वप्न मैंने देखा था वह मेरे हृदय को विदीर्ण किये डाल रहा है। मेरे नेत्रों के सामने अन्धकार छा रहा है। मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा।" यह कहकर वह अचेत हो गई।

माता सुभद्रा ने उत्तरा को अपनी अंक में भरकर पलंग पर लिटा दिया। सुभद्रा का हृदय उत्तरा की यह दशा देखकर अधीर हो उठा। वह स्वयं भी बहुत भयभीत थीं।

अभिमन्यु अपनी सेना के साथ, उत्साह से पूर्ण, चक्रव्यूह की दिशा में बढ़ गया। उसे अपने मन में कोई शंका नहीं थी कि वह चक्रव्यूह को छिन्न-भिन्न नहीं कर सकेगा।

अभिमन्यु को आते देख कौरव-दल अभिमन्यु पर टूट पड़ा, परन्तु अभिमन्यु ने उनके होश उड़ा दिये। अभिमन्यु की भीषण वाण-वर्षा ने शत्रु-दल को बुरी तरह हताहत किया। द्वार-रक्षक जयद्रथ को पछाड़कर अभिमन्यु व्यूह में घुस गया और उसके भयंकर युद्ध से वहाँ प्रलय-काल उपस्थित हो गया। कौरव-दल आतंकित हो उठा।

अभिमन्यु तो चक्रव्यूह मे प्रवेश कर गया, परन्तु उसके अंग-रक्षक व्यूह मे प्रवेश न कर सके। उन्हें द्वार पर ही रोक दिया गया। कौरवो ने अपने ध्वस्त व्यूह को फिर से ठीक कर लिया।

अभिमन्यु अकेला ही व्यूह मे अपना पराक्रम दिखाने लगा। अभिमन्यु के सामने दुर्योधन न ठहर सका तो कर्ण उसकी रक्षा के लिये आगया। कुछ देर मे कर्ण को भी पीछे हटना पड़ा।

दुर्योधन के भागते ही अभिमन्यु ने विजय-शंख फूँक दिया और वह आगे बढ़-बढ़कर शत्रु-सेना का सहार करने लगा। शल्य अभिमन्यु की ओर बढ़े तो अभिमन्यु के अचूक बाणो ने उन्हे मूर्छित कर दिया।

दुर्योधन ने युद्ध की यह स्थिति देखी तो वह भयभीत हो उठा। उसने अपने सैनिकों को ललकारा ! वह क्रोधपूर्ण वाणी में बोला, "वीरो ! आचार्य द्रोण से सहायता की आशा छोड़ दो। वह अपने शिष्य अर्जुन के पुत्र का पराक्रम देखकर युद्ध-धर्म को भूल गये हैं। तुम सब मिलकर एक साथ इस पर आक्रमण करो।"

दुर्योधन की ललकार सुनकर दुःशासन आगे बढ़ा, परन्तु अभिमन्यु के समक्ष वह न ठहर सका। उसका सारथी उसके प्राणों की रक्षा के लिये रथ को दौड़ाकर ले गया।

अभिमन्यु ने दुर्योधन-सुत लक्ष्मण और शल्य-सुत रुक्मरथ को मौत के घाट उतार दिया। यह देखकर कर्ण अभिमन्यु के सामने आगया।

दुर्योधन आचार्य द्रोण से बोले, "आचार्य ! आप इसे बालक जानकर इसपर दया न करें। यह कौरवो का काल बनकर आया है।"

द्रोण बोले, "दुर्योधन ! मैं तुम्हारे व्यग्य-बाणो की चिंता न कर अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहा हूँ। अभिमन्यु के हाथो मे जब तक अस्त्र-शस्त्र हैं, इसे पराजित करना असम्भव है। तुम किसी प्रकार

इसके अस्त्र रखवा लो तो इसका निधन सम्भव हो सकता है।"

द्रोण का आदेश सुनकर सब कौरव महारथी मिलकर अभिमन्यु पर टूट पड़े। चारों ओर के आक्रमण का अभिमन्यु ने डट कर सामना किया परन्तु इस महायुद्ध में उसके सब अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न हो गये। उसका सारथी मारा गया। उसका रथ टूट गया। उसके घोड़े मर कर भूमि पर गिर पड़े।

तब दुःशासन के पुत्र ने अभिमन्यु के सिर पर गदा का प्रहार किया। अभिमन्यु भूमि पर गिर पड़ा और कौरव महारथी उस पर टूट पड़े। अभिमन्यु को इस प्रकार अधर्म से मारकर कौरवों ने विजय-घोष किया।

कौरवों का विजय-घोष सुनकर पाण्डव-सैनिक भयभीत होकर शिविर की दिशा में भागने लगे। युधिष्ठिर यह समाचार पाकर अधीर हो उठे और गरज कर बोले, "वीरो! भागते क्यों हो? वीरता और शौर्य से कौरव-दल पर प्रलय बनकर टूट पड़ो।"

धर्मराज की ललकार सुनकर पाण्डव-पक्ष के उखड़ते हुए पैर जम गये और प्रलयंकारी युद्ध छिड़ गया। पाण्डवों का यह आक्रमण बड़े वेग का हुआ, जिसके सामने कौरव न ठहर सके।

संध्या होने पर शांति-शंख बजा और पाण्डव-सेना ने अपने शिविर की ओर मुख किया तो युधिष्ठिर के बढ़ते हुए कदम रुक गये। उनके नेत्रों के सामने अंधकार छा गया। आज पाण्डव-कुल के दीपक को उन्होंने अपने हाथ से बुझा दिया था।

अर्जुन युद्ध से लौट रहे थे तो अनेकों अमंगलसूचक घटनायें उनके सामने आ रही थीं। कौरवों के शिविर में होने वाला विजय-घोष उनके कानों में पड़ रहा था। कृष्ण समझ गये कि अभिमन्यु वीरगति को प्राप्त हो गया। उन्होंने रथ की गति को तीव्र कर दिया। वह सीधे उसी स्थान पर पहुँचे जहाँ अभिमन्यु का शव पड़ा था

शव को अंक में लिये प्रलाप कर रही थी और उत्तरा अचेत थी, मानो करुणा मूर्तिमानरूप में सामने पड़ी थी। अर्जुन के चारो ओर पांचाली शोक-विह्वल थे।

अर्जुन और कृष्ण को सामने देखकर सुभद्रा के धैर्य का बाँध टूट गया। वह रो-रो कर पगली-सी हो उठी। अर्जुन ने अभिमन्यु का रक्त मे लथ-पथ देखा तो वह भी खड़े न रह सके। उनका हृदय विदीर्ण हो गया। भीम ने अश्रुओं के मध्य उन्हें आज की स्थिति बताई।

कृष्ण क्रोधित होकर बोले, "धिक्कार है तुम्हें द्रोण ! तुमने निशस्त्र बालक को अपने सामने इस प्रकार अधर्म से मरते देखा। तुमने अभिमन्यु को छल से मारा है तो तुम्हें भी इसका भोग भोगना होगा। सात-सात महारथियों ने मिलकर एक बालक के प्राण लिये।

अर्जुन ! उठो और प्रलयकारी रूप धारण करो।"

कृष्ण के वचन सुन कर अर्जुन के नेत्र लाल हो गये। वह सक्रोध बोले, "अभिमन्यु के एक-एक हत्यारे को मैं जब तक मृत्यु के घाट न उतार दूँगा, तब तक मेरे हृदय को शान्ति प्राप्त न होगी।"

श्रीकृष्ण ने पूछा, "चक्रव्यूह के सिंहद्वार का रक्षक कौन था आर्य भीम ?"

भीम ने बताया, "जयद्रथ व्यूह के सिंहद्वार का रक्षक था। उसी ने हमें व्यूह में प्रवेश नहीं करने दिया।"

अर्जुन की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उन्होंने दूसरे दिन जयद्रथ का सूर्यास्त से पूर्व संहार करने की प्रतिज्ञा की। अर्जुन बोले, "कृष्ण ! जिस जयद्रथ को हमने बन्दी बनाकर भी प्राण-दान दिया, उसी ने हमें यह दिन दिखाया। मैं आपकी सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि सूर्यास्त से पूर्व या तो उसे यमपुरी पहुँचा दूँगा, अन्यथा स्वयं चिता पर जल कर प्राण दे दूँगा।"

कृष्ण ने देखा अर्जुन रौद्रावतार से प्रतीत हो रहे थे। उनके भुज-दण्ड फड़क रहे थे और नेत्र आग हो उठे थे।

कौरवों के गुप्तचरों ने जयद्रथ को जाकर अर्जुन के प्रण की सूचना दी तो वह कांप उठा। वह दुर्योधन के शिविर में पहुँचा और भय-भीत वाणी में बोला, "महाराज! अब आप या तो मेरी रक्षा करें, अन्यथा मुझे अपने देश लौटने की आज्ञा प्रदान करें। आप कहें तो मैं कहीं किसी जगह जाकर छिप जाऊँ। कल अर्जुन जब मुझे नहीं खोज सकेगा तो वह स्वयं जलकर भस्म होजायगा और आपकी विजय हो जायगा।"

दुर्योधन उस दिन की अपनी विजय के गर्व में फूला नहीं समा रहा था। अभिमन्यु को मारकर वह अपने पुत्र लक्षमण के शोक को भूल गया था। वह सगर्व बोला, "क्या कायरों जैसी बातें करते हो जयद्रथ! तुम घर भाग जाओगे तो हमारे मस्तक पर कलंक का टीका लग जायगा। कल हमारी सारी सेना और हमारे सब महारथी तुम्हारी रक्षा करेंगे। मैं अभी जाकर आचार्य द्रोण से मिलता हूँ। कल ऐसे व्यूह की रचना की जायेगी जो अभेद्य हो और तुम्हारे पास तक पक्षी भी पर मार सके।"

दुर्योधन की आशापूर्ण बात सुनकर जयद्रथ के हृदय को तनिक धैर्य बंधा, परन्तु अन्दर से उसकी आत्मा भयभीत ही रही। अर्जुन के बाणों की विकरालता से वह अपरिचित नहीं था।

८

दुर्योधन का मन आज की द्रोणाचार्य की वीरता और नीति-कुश-
ता पर मुग्ध हो उठा था। वह आज आनन्दविभोर था। उसे अब
अपनी विजय में कोई शंका नहीं रही थी। उसे विश्वास हो गया
था कि द्रोण जयद्रथ के प्राणों की रक्षा में पूर्ण सफल होंगे और फल-
स्वरूप अर्जुन चिता पर जलकर भस्म हो जायगा। अर्जुन के मरते ही
पाण्डवों की शक्ति समाप्त हो जायगी और फिर युद्ध-भूमि में कौरवों
की विजय-पताका फहरायेगी। अर्जुन के न रहने पर कर्ण के सामने
कौन ठहर सकेगा?

दुर्योधन द्रोण के शिविर में पहुँचा और उनसे भेंट करके बोला,
"आचार्य! आज पहला दिन है जब हम गर्व से अपना मस्तक ऊँचा
करके चल पाये हैं। आपकी नीतिकुशलता ने हमें यह दिन दिखाया है।
यदि कल आप शकटव्यूह की रचना कर जयद्रथ के प्राणों की रक्षा
में सफल हो जायें तो फिर हमारी विजय में कोई संदेह न रहे।"

द्रोण के हृदय में अभिमन्यु के अधर्मपूर्ण निधन का काँटा बुरी
तरह खटक रहा था। उन्हें दुर्योधन की प्रशंसा भली नहीं लगी परन्तु
ऊपर से उन्होंने उत्तर दिया, "दुर्योधन! मुझसे जितना भी जयद्रथ की
प्राण-रक्षा का प्रयत्न हो सकेगा उसे करने में कोई कसर उठा नहीं
रखूँगा। मेरा प्रयत्न यही रहेगा कि जयद्रथ के प्राणों की रक्षा हो।"

दुर्योधन वहाँ से प्रसन्नतापूर्वक अपने शिविर को लौटा। अर्धरात्रि
में शकटव्यूह की रचना की गई और जयद्रथ को उसके पिछले के भाग
में छिपाकर रखा गया।

कृष्ण ने पाण्डव-पक्ष के सब महारथियों को एकत्रित कर आगाम
दिन की युद्ध-नीति प्रसारित की। रात्रिभर कृष्ण और अर्जुन को नं

कृष्ण ने देखा अर्जुन रौद्रावतार से प्रतीत हो रहे थे। उनके भुज-दण्ड फड़क रहे थे और नेत्र आग हो उठे थे।

कौरवों के गुप्तचरों ने जयद्रथ को जाकर अर्जुन के प्रण की सूचना दी तो वह कांप उठा। वह दुर्योधन के शिविर में पहुँचा और भय-भीत वाणी में बोला, "महाराज ! अब आप या तो मेरी रक्षा करें, अन्यथा मुझे अपने देश लौटने की आज्ञा प्रदान करें। आप कहें तो मैं कहीं किसी जगह जाकर छिप जाऊँ। कल अर्जुन जब मुझे नहीं खोज सकेगा तो वह स्वयं जलकर भस्म होजायगा और आपकी विजय हो जायगी।"

दुर्योधन उस दिन की अपनी विजय के गर्व में फूला नहीं समा रहा था। अभिमन्यु को मारकर वह अपने पुत्र लक्षमण के शोक को भूल गया था। वह सगर्व बोला, "क्या कायरों जैसी बातें करते हो जयद्रथ ! तुम घर भाग जाओगे तो हमारे मस्तक पर कलंक का टीका लग जायगा। कल हमारी सारी सेना और हमारे सब महारथी तुम्हारी रक्षा करेंगे। मैं अभी जाकर आचार्य द्रोण से मिलता हूँ। कल ऐसे व्यूह की रचना की जायेगी जो अभेद्य हो और तुम्हारे पास तक पक्षी भी पर मार सके।"

दुर्योधन की आशापूर्ण बात सुनकर जयद्रथ के हृदय को तनिक धैर्य बंधा, परन्तु अन्दर से उसकी आत्मा भयभीत ही रही। अर्जुन के बाणों की विकरालता से वह अपरिचित नहीं था।

८

दुर्योधन का मन आज को द्रोणाचार्य की वीरता और नीति-कुश-
लता पर मुग्ध हो उठा था। वह आज आनन्दविभार था। उसे अब
अपनी विजय मे कोई शंका नहीं रही थी। उसे विश्वास हो गया
था कि द्रोण जयद्रथ के प्राणों की रक्षा में पूर्ण सफल होंगे और फल-
स्वरूप अर्जुन चिता पर जलकर भस्म हो जायगा। अर्जुन के मरते ही
पाण्डवों की शक्ति समाप्त हो जायगी और फिर युद्ध-भूमि में कौरवों
की विजय-पताका फहरायेगी। अर्जुन के न रहने पर कर्ण के सामने
कौन ठहर सकेगा?

दुर्योधन द्रोण के शिविर में पहुँचा और उनसे भेंट करके बोला,
"आचार्य! आज पहला दिन है जब हम गर्व से अपना मस्तक ऊँचा
करके चल पाये हैं। आपकी नीतिकुशलता ने हमें यह दिन दिखाया है।
यदि कल आप शकटव्यूह की रचना कर जयद्रथ के प्राणों की रक्षा
में सफल हो जायँ तो फिर हमारी विजय में कोई संदेह न रहे।"

द्रोण के हृदय में अभिमन्यु के अधर्मपूर्ण निधन का कांटा बुरी
तरह खटक रहा था। उन्हें दुर्योधन की प्रशंसा भली नहीं लगी परन्तु
ऊपर से उन्होंने उत्तर दिया, "दुर्योधन! मुझसे जितना भी जयद्रथ की
प्राण-रक्षा का प्रयत्न हो सकेगा उसे करने में कोई कसर उठा नहीं
रखूँगा। मेरा प्रयत्न यही रहेगा कि जयद्रथ के प्राणों की रक्षा हो।"

दुर्योधन वहाँ से प्रसन्नतापूर्वक अपने शिविर को लौटा। अर्धरा[त्रि]
में शकटव्यूह की रचना की गई और जयद्रथ को उसके पिछले के भ[ाग]
में छिपाकर रखा गया।

कृष्ण ने पाण्डव-पक्ष के सब महारथियों को एकत्रित कर आग[ामी]
दिन की युद्ध-नीति प्रसारित की। रात्रिभर कृष्ण और अर्जुन को

नहीं आई। वे आगामी दिन के युद्ध की योजना बनाते रहे।

प्रातःकाल होते ही पाण्डव-सेना मैदान में उतरी तो उन्होंने देखा आचार्य द्रोण ने उनके सामने शकटव्यूह की रचना की हुई थी। आज युद्ध का चौदहवाँ दिन था।

रणभेरी बज उठी। युद्ध आरम्भ हुआ। अर्जुन का रथ तीर के समान दौड़ा और कौरवों के दुर्भेद्य व्यूह के सिंहद्वार पर जा पहुँचा। आचार्य द्रोण सिंहद्वार की रक्षा कर रहे थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वह अर्जुन को व्यूह में प्रवेश नहीं करने देंगे।

अर्जुन ने आचार्य से व्यूह में प्रवेश करने की आज्ञा माँगी तो द्रोण मुस्कराकर बोले, "अर्जुन! यह गुरु का द्वार नहीं, युद्धव्यूह का द्वार है। इसके अन्दर प्रवेश प्राप्त करना हमारी आज्ञा पर नहीं, तुम्हारे रण-कौशल पर निर्भर करता है। आगे बढ़ो और व्यूह का भेदन करो।"

द्रोण और अर्जुन का भीषण युद्ध छिड़ गया। दोनों ओर से तीरों की वर्षा होने लगी।

आचार्य द्रोण और अर्जुन नें इतना भयंकर युद्ध किया कि अर्जुन का पर्याप्त समय वहीं निकल गया। कृष्ण बोले, "अर्जुन! इनसे जूझते-जूझते तो सूर्य अस्त हो जायगा और पापी जयद्रथ का संहार न हो सकेगा। मैं चपके से अपना रथ यहाँ से हटाकर अन्यत्र ले चलता हूँ। तुम साव-धानी से द्रोण पर बाण-वर्षा करते रहो।"

अर्जुन के रथ को घूमते देख कर द्रोण बोले, "क्या वीर अर्जुन अपनी वह प्रतिज्ञा भूल गया कि सम्मुख आये शत्रु को हराये बिना वह सामने से नहीं हटेगा।"

अर्जुन दौड़ते हुए रथ पर खड़े होकर बोले, "अर्जुन की वह प्रतिज्ञा गुरुदेव के लिये नहीं है।"

द्रोण ने अर्जुन का पीछा किया, परन्तु अर्जुन भीषण मार-काट

करते हुए आगे निकल गया। उसी समय भीम ने आगे बढ़कर द्रोण के रथ पर भीषण प्रहार किया। उनका रथ खण्ड-खण्ड हो गया।

अर्जुन को वहाँ से हटकर व्यूह में प्रवेश करते देख दुर्योधन भयभीत हो उठा। उसके क्रोध का पारावार न रहा। वह सक्रोध आचार्य द्रोण से बोला, "गुरुदेव ! यदि अर्जुन पर इतनी ममता थी तो जयद्रथ को अभय-दान क्यों दिया था ? अब अर्जुन को जयद्रथ के पास पहुँचने से कौन रोक सकता है ? यदि आप सावधानी से लड़ते तो क्या वह इस प्रकार व्यूह में प्रवेश कर पाता ? क्या वह आपसे बचकर निकल सकता था ?"

दुर्योधन की यह बात सुनकर आचार्य द्रोण के दिल में क्रोध की ज्वाला भड़क उठी। वह बोले, "दुर्योधन ! मैं अब वृद्ध हो गया हूँ। मैं ही नहीं कृष्ण और अर्जुन को संसार में कोई पराम्त नहीं कर सकता। मैं तुम्हें अभेद्य कवच पहनाता हूँ। तुम स्वयं जाकर उनके बल और शौर्य की परीक्षा लो। तुम्हारे बदन पर किसी अस्त्र का प्रभाव न होगा।"

द्रोण ने दुर्योधन को अभेद्य कवच प्रदान किया। इधर दुर्योधन अर्जुन से लोहा लेने चला और उधर पाण्डवों ने आचार्य द्रोण पर आक्रमण कर दिया। कौरव-सेना में भगदड़ मच गई। आचार्य ने कुपित होकर धृष्टद्युम्न पर विकराल बाण छोड़ा, परन्तु उसने उसे बीच में ही काट दिया।

द्रोण को पाण्डवों ने घेर लिया। दूसरी ओर अर्जुन जयद्रथ के निकट जा पहुँचे। अर्जुन को जयद्रथ के निकट देखकर दुर्योधन बीच में आगया। अर्जुन ने दुर्योधन पर आक्रमण किया, परन्तु उनके अस्त्र विफल हो गये। वह समझ गये कि द्रोण ने उसे अभेद्य कवच देकर भेजा है। अर्जुन ने दुर्योधन के हाथों को कवच से बाहर देखकर उन्हीं को लक्ष्य बनाया और उसके दोनों हाथ बेकार कर दि[illegible] सके हाथों

से अस्त्र-शस्त्र छूट कर नीचे गिर पड़े।

अर्जुन ने उग्र रूप धारण कर कौरव-सेना को रूई के समान धुनना प्रारम्भ कर दिया। उस समय सम्पूर्ण कौरव सेना उसी स्थल पर आ गई थी। आज उसका लक्ष केवल मात्र जयद्रथ की रक्षा करना था।

यह भयंकर स्थिति देखकर कृष्ण ने पांचजन्य शंख फूंका। शंख की ध्वनि युधिष्ठिर के कानों में पड़ी तो वह सात्यकि से बोले, "सात्यकि! शत्रु की असंख्य सेना अर्जुन पर आक्रमण करने जा रही है। तुम तुरन्त अर्जुन की रक्षा के लिये पहुँचो। तुम इस समय मेरी चिन्ता छोड़ दो।"

सात्यकि अर्जुन की सहायता के लिये दौड़ा तो द्रोण उसके सामने आ गये। सात्यकि ने द्रोण के रथ, घोड़े और सारथी सभी को समाप्त कर दिया। यह देख कर द्रोण क्रोध से पागल हो उठे। वह बोले, "सात्यकि! देख रहा हूँ तेरे शीष पर काल मंडरा रहा है। यदि तू अर्जुन की भाँति भाग न खड़ा हुआ तो आज तुझे यमलोक पहुँचा दूँगा।"

सात्यकि बोला, "जब मेरे गुरु अर्जुन आपके सामने से हट गये तो मैं भला क्या चीज हूँ आपके सामने? आचार्य के सामने भला मैं कैसे ठहर सकता हूँ?" यह कहकर उसने अपना रथ घुमा दिया। वह कौरवों की अपार सेना को चीरता हुआ अर्जुन के निकट जा पहुँचा।

युधिष्ठिर ने भीम से कहा, "भीम! अर्जुन संकट में है। तुम तुरन्त उसकी रक्षा के लिये जाओ। सिंहद्वार से न जाकर व्यूह में दाँई ओर से घुसना। सामने से आचार्य द्रोण तुम्हें प्रवेश नहीं करने देंगे।"

भीम अपने अपना शंख को बजाता हुआ दाँई ओर से व्यूह में घुस गया और शत्रु-सेना को भूमि पर बिछाता हुआ अर्जुन के पास जा पहुँचा।

भीमसेनीशंख का शब्द कौरवों के कानो मे पड़ा तो कौरव-सेना काई की तरह फटती चली गई। कौरव-सेना का साहस छूटने लगा।

भीम के शंख-रव को सुनकर अर्जुन ने प्रत्युत्तर में अपना शंख बजाया। अर्जुन का हृदय कौरव-दल को भागते देखकर हर्ष से भर उठा। अर्जुन और भीम की शंख-ध्वनि धर्मराज ने सुनीं तो उनके व्याकुल हृदय को शांति मिली। तभी उन्होंने कौरव-सेना को भागते देखा। उनकी सेना में भगदड़ मच गई थी।

भीम को अर्जुन के निकट पहुंचते देख कर दुर्योधन के इक्कीस भाइयों ने एक साथ मिल कर भीम पर आक्रमण किया। भीम ने इक्कीस-के-इक्कीस को यमपुरी पहुंचा दिया। यह देखकर कर्ण भीम पर टूट पड़ा। दोनों का घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। कर्ण के सामने भीम न ठहर सके। वह घायल होकर भूमि पर गिर पड़े। कर्ण भीम को मारने के लिये लपका तो उसे माता कुन्ती को दिया गया अपना वचन याद आ गया। वह ठिठक कर पीछे हट गया और हंसकर बोला, "भीम ! हो चुकी तेरी वीरता की परीक्षा। जा अपने शिविर को लौट जा।"

तब तक भीम को तनिक सांस आ गया था। उसने कर्ण का धनुष छीन कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला और खम ठोककर बोला, "कर्ण ! हार-जीत अवसर की होती है। आ मल्ल-युद्ध मे दो-दो हाथ हो जायें जरा।"

कर्ण भीम के मल्ल-युद्ध से परिचित था। भीम की भुजाओ मे फंस जाना काल के मुख में जाने के समान था। उससे मल्ल-युद्ध करना उसके लिये सम्भव न था। वह भयभीत हो उठा।

तभी सात्यकि सामने से आता दिखाई दिया। भूरिश्रवा ने सात्यकि को देख कर उस पर आक्रमण कर दिया। सात्यकि युद्ध करते-करते थक गया था। भूरिश्रवा ने सात्यकि का रथ छिन्न-भिन्न कर दिया।

भूरिश्रवा सात्यकि पर तलवार का वार करना ही चाहता था कि अर्जुन के बाण ने उसके दोनों हाथों को काट कर गिरा दिया।

भूरिश्रवा अर्जुन से बोला, "अर्जुन ! तुमने यह छलिया कृष्ण के कहने से धर्मविरुद्ध कार्य किया है। जब मैं तुमसे युद्ध नहीं कर रहा था तो तुमने मुझ पर वार क्यों किया ?"

अर्जुन बोले, "भूरिश्रवा ! गिरे हुए सात्यकि पर तलवार लेकर झपटना कहाँ का धर्म था ? सात महारथियों का मिलकर अस्त्रविहीन अभिमन्यु को मारना कहाँ का धर्म था ? क्या तुम लोग भी धर्म की दुहाई देने का मुँह रखते हो ?" यह सुनकर भूरिश्रवा मौन हो गया और शर-शय्या पर बैठकर प्राण त्याग देने का निश्चय किया।

कृष्ण ने विरथ सात्यकि और भीम को अपने ही रथ पर बिठाकर रथ आगे बढ़ाया और ठीक जयद्रथ के रथ के पास पहुँच गये। अर्जुन के रौद्र रूप को देखकर दुर्योधन भय से काँप उठा। उसने कर्ण से कहा, "कर्ण ! आगे बढ़कर अर्जुन को रोको।"

कर्ण बोला, "मेरा अंग-अंग भीम ने तोड़ दिया है। मैं इस समय बहुत थक गया हूँ। फिर भी तुम्हारी आज्ञा का उलंघन नहीं कर सकता।"

अर्जुन शंख बजाकर बाज की तरह शत्रु-सेना पर टूट पड़े। रक्त की सरिता बह चली। शवों के ढ़ेर लग गये। कौरव-दल हताश होकर भाग खड़ा हुआ, परन्तु तभी सबने देखा कि सूर्य पश्चिम दिशा की लालिमा के निकट जा चुका था।

कौरव-महारथियों ने जयद्रथ को अपने पीछे छिपाया हुआ था। वे उसकी रक्षा का युद्ध कर रहे थे। दोनों ओर से ऐसी बाणों की वर्षा हुई कि आकाश तीरों से आच्छादित हो गया और भूमि पर अंधकार छा गया। अर्जुन ने दिव्यास्त्र द्वारा आकाश को और भी अंधकारपूर्ण बना दिया। सबको लगा कि सूर्य अस्त हो गया।

सूर्य को अस्त मानकर युद्धसमाप्ति का बिगुल बज गया। बिगुल बजते ही जयद्रथ निकलकर बाहर आ गया और अर्जुन से बोला, "अर्जुन ! अब यह गाण्डीव मेरे हवाले कर दो और चिता पर जलने के लिये उद्यत हो जाओ।"

अर्जुन का मुख पीला पड़ गया था। उसके हाथ से गाण्डीव छूट पड़ा। कृष्ण ने गाण्डीव अपने हाथ में उठा लिया। उनका चेहरा भी गम्भीर बना हुआ था।

अर्जुन के चिता पर जलने की तैयारी होने लगी। पाण्डव-पक्ष शोकाकुल हो उठा। कौरव-पक्ष हर्ष से उन्मत्त था।

कौरवों को भ्रम में डालने के लिये कृष्ण बोले, "धर्मराज युधिष्ठिर ! चिता तैयार कराओ। प्रणवीर अर्जुन वीरगति को प्राप्त हो रहे हैं। इसमें हताश होने की आवश्यकता नहीं है। यदि वह अपनी प्रथम प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सके तो दूसरी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे।"

धर्मराज युधिष्ठिर ने चिता तय्यार कराई और उसमें कांपते हुए हाथों से अग्नि प्रज्वलित की।

कृष्ण अर्जुन से गले मिले और गम्भीर वाणी में बोले, "अर्जुन चिता पर बैठकर अपना प्रण पूर्ण करो। तुम वीरगति को प्राप्त हो रहे हो।"

अर्जुन चिता की ओर बढ़े तो हर्ष से उन्मत्त जयद्रथ कौरवों के बीच से निकल कर सामने आगया। वह हँसकर बोला,"तुम्हें भय लग रहा है अर्जुन ? अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके कुरु-कुल की मर्यादा को निभाओ।"

अर्जुन मौन चिता की ओर बढ़ चले। कृष्ण अपने हाथ में गाण्डीव लिये हुए उनके साथ थे। वातावरण नितान्त गम्भीर था। पाण्डव-पक्ष में शोक छाया हुआ था।

अर्जुन चिता में बैठने से पूर्व एक बार फिर कृष्ण से गले मिले।

कृष्ण मुस्कराकर पश्चिम-दिशा की ओर आकाश पर देखकर गाण्डीव अर्जुन की ओर बढ़ाते हुए बोले, "अर्जुन! जयद्रथ तुम्हारे सामने है। सूर्य देवता पश्चिम दिशा में मुस्करा रहे हैं। उन्हें बलि दो इस नर-पशु की।"

अर्जुन की दृष्टि पश्चिम-दिशा की ओर गई तो देखा आकाश में सूर्य निखर कर सामने आ गया था। उनकी दृष्टि फिर जयद्रथ पर गई। उन्होंने श्री कृष्ण के हाथ से अपना गाण्डीव लेकर तरकश से तीर निकाला और एक ही तीर से जयद्रथ का सिर धड़ से अलग कर दिया। जयद्रथ का धड़ भूमि पर गिर पड़ा।

आकाश में सूर्य को देखकर कौरव-गण भौंचक्के रह गये। कृष्ण ने पांचजन्य-शंख बजाकर अपने शिविर में विजय-संदेश भेजा। अर्जुन का देवदत्त शंख बज उठा। 'जयद्रथ मारा गया की ध्वनि वायुमण्डल में गूंज उठी। पाण्डव-शिविर में हर्षसूचक बाजे बज उठे। अर्जुन के सब भाईयों ने अर्जुन को हाथों पर उठा लिया। श्री कृष्ण की नीति-कुशलता से पाण्डव-पक्ष गद्गद् हो उठा।

जयद्रथ की मृत्यु से कौरव-पक्ष शोक-सागर में डूब गया। दुर्योधन ी निराशा का पारावार न था। भीम ने आज उसके इक्कीस इयों को मृत्यु के घाट उतार दिया था। भूरिश्रवा का भी आज निधन गया था और अन्त में उसका बहनोई जयद्रथ भी मृत्यु को प्राप्त ा। आज का दिन कौरव-पक्ष के लिये अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध ।

दुर्योधन जला-भुना आचार्य द्रोण के शिविर में पहुँचा और क्रोधा-में बोला, "गुरुदेव! आपने क्या सचमुच हमारा सर्वनाश कराने निश्चय कर लिया है? आप जैसा योद्धा हमारा सेनापति होने पर मारी हार होती जा रही है। हमारी सेना भी अब पाण्डवों से कम रह गई है। आपका पाण्डवों से इतना अधिक मोह है तो

स्पष्ट कह दीजिये, जिस से मैं कोई अन्य प्रबन्ध करूं।"

दुर्योधन की यह बात सुनकर आचार्य द्रोण क्रोधित होकर बोले, "दुर्योधन ! तुम बराबर मेरी भर्त्सना करते चले जा रहे हो। मुझ पर पक्षपात का दोष लगा रहे हो। तुम्हारा अन्नभोगी होने के कारण मैंने न्याय के विरुद्ध अस्त्र उठाये हैं। तुम्हारे साथ मैं भी पाप का भागी बना हूं। तुम्हारी पराजय का कारण मैं नहीं, तुम्हारा अधर्म है। कल सात महारथियों ने मिलकर अस्त्रविहीन अभिमन्यु को मार डाला। क्या उसका फल तुम्हें न भोगना पड़ता ? तुम्हारी पराजय और तुम्हारे सर्वनाश को ब्रह्मा भी नहीं रोक सकता। विष का बीज बोकर तुम अमृत-फल प्राप्त करने की आशा करते हो ?"

द्रोण की करारी फटकार सुनकर दुर्योधन नतमस्तक हो गया। वह चुपचाप अपने शिविर को लौट गया। उसमें अब साहस नहीं था कि वह उनके सामने एक शब्द भी बोल पाता।

दूसरे दिन द्रोण ने युद्ध में जो उग्र रूप धारण किया उसे देखकर पाण्डव भयभीत हो उठे। दुर्योधन भी युद्ध में अपना पराक्रम दिखाने में पीछे न रहा, परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर की अनवरत बाण-वृष्टि के सामने उसे पीठ दिखाकर भागना पड़ा।

महाबली भीम की दृष्टि सोमदत्त पर पड़ी। वह पाण्डव-सेना का बुरी तरह संहार कर रहा था। भीम द्रोण को छोड़कर सोमदत्त पर झपट पड़े। भीम की गदा के एक ही वार से सोमदत्त मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। यह देखकर सोमदत्त के पुत्र ने भीम पर आक्रमण कर दिया। भीम ने एक ही वार में उसे भी यमपुरी पहुंचा दिया। सोमदत्त के पुत्र को गिरते देखकर दुर्योधन के सोलह भाई भीम पर टूट पड़े। भीम ने उन्हें भी समाप्त कर दिया। आज भीम ने कर्ण के सूतजात भाई वृषय और शकुनि के भाई शतचन्द्र को भी यमलोक पहुंचा दिया।

भीम के इस उग्र रूप को देखकर कर्ण पाण्डव-सेना पर टूट पड़ा। यह देखकर अर्जुन कर्ण के समक्ष आ डटे और दो ही बाणों से उसके सारथी तथा रथ को समाप्त कर कर्ण को निरथं कर दिया। कर्ण को इस प्रकार निरथं देख कृपाचार्य अपना रथ दौड़ा कर वहां पहुंच गये और उसे अपने रथ पर बिठा लिया।

कर्ण ने फिर भयंकर युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। अर्जुन उधर बढ़ने लगे तो कृष्ण ने अर्जुन को रोककर घटोत्कच को ललकारा। घटोत्कच ने भयंकर वेग से युद्ध करना आरम्भ किया। उसके युद्ध से कौरव-दल में हाहाकार मच गया। कर्ण के छक्के छूट गये और दुर्योधन को दिखाई दिया कि युद्ध का वही अन्तिम दिन है।

दुर्योधन बोला, "कर्ण! तुम्हारी वह अमोघ-शक्ति किस दिन काम आयेगी? अर्जुन तक पहुंचने का तो यह घटोत्कच तुम्हें अवसर ही नहीं देगा। क्या उसे लेकर ही तुम मृत्युलोक को सिधारना चाहते हो? देख नहीं रहे हो इसने हमारी सारी सेना को काट-काटकर भूमि पर बिछा दिया है।"

दुर्योधन के ये शब्द सुनकर कर्ण ने अपनी उस अमोघ-शक्ति का घटोत्कच पर प्रहार कर दिया, जिसे उसने अर्जुन के लिये सुरक्षित रखा हुआ था और घटोत्कच संज्ञाशून्य होकर भूमि पर गिर पड़ा।

घटोत्कच के मरते ही पाण्डव-सेना में हाहाकार मच गया। पाण्डव-सेना भयभीत हो उठी।

कृष्ण यह देखकर कि कर्ण उस अमोघ-शक्ति का प्रयोग कर चुका, जिससे वह अर्जुन को मार सकता था, अर्जुन से बोले, "अर्जुन! अब निर्भीक होकर कर्ण पर आक्रमण करो और इसे इसकी करनी का दण्ड दो। अब यह तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

कृष्ण के उत्साहपूर्ण शब्द सुनकर अर्जुन ने कर्ण पर भयंकर आक्रमण किया। अर्जुन के आक्रमण ने कौरवों के पैर उखाड़ दिये

और उनकी सेना भाग खड़ी हुई । अर्जुन ने कृपाचार्य और कर्ण को निरस्त्र कर दिया और उनके रथ, घोड़े तथा सारथी सब समाप्त करके कहा, 'जाओ, अब दूसरे अस्त्र, रथ, घोड़े और सारथी लेकर कल प्रातःकाल अर्जुन से युद्ध करने आना । अर्जुन निरस्त्रों पर वार नहीं करता वह उन लोगों की तरह कायर और नीच नहीं है जो निरस्त्र बालक पर सात-सात महारथी मिलकर प्रहार करते हैं ।"

कर्ण और कृपाचार्य गर्दन नीची किये अपने शिविरों को लौट गये । उनके सिर लज्जा से झुके हुए थे ।

उस दिन रात्रि को फिर कृष्ण ने फिर पाण्डव-वीरों को मन्त्रणा के लिये आमन्त्रित किया और बोले, "अर्जुन ! कल आचार्य द्रोण का वध करना है । द्रोण के रहते युद्ध समाप्त नहीं होगा । अब युद्ध को और लम्बा करना उचित नहीं है ।"

आज युद्ध में यों कर्ण ने घटोत्कच का वध अवश्य कर दिया था परन्तु कौरवों की बहुत बड़ी क्षति हुई थी । भीम ने दुर्योधन के सोलह भाईयों, मामाओं और आत्मीय जनों को मृत्यु के घाट उतार दिया था । घटोत्कच ने तो उनकी सेना का प्राय सफाया ही करदिया था । उनकी सैनिक संख्या बहुत कम रह गई था ।"

दुर्योधन ने फिर द्रोण के पास जाकर अपनी वही बात दोहराई और बोला, 'गुरुदेव ! आप धर्म-धर्म कहकर बराबर पाण्डवों की रक्षा करते जारहे हैं । यदि आज रात्रिभर युद्ध होता रहता तो हम रात्रि में पाण्डवों के दल का सफाया कर डालते ."

दुर्योधन की यह बात सुनकर द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर बोले, "जब तक मैं सेनापति हूँ धर्म विरुद्ध कोई कार्य नहीं करूंगा । रात और दिन लड़ते रहना मनुष्यों का काम नहीं है । मैं अपने रहते छल-प्रपंच को प्रश्रय नहीं देसकता । दादा समाप्त हो गये अब मेरी बारी है । इसके पश्चात तुम्हारी जो इच्छा हो सो करना । जाओ, अब भविष्य में तुम्हें

व्यंग्यबाण छोड़ने का अवसर नहीं मिलेगा।"

दुर्योधन वहाँ से चला गया। दूसरे दिन युद्ध प्रारम्भ हुआ और लोहे से लोहा बज उठा। द्रोण का विकराल रूप देखकर युधिष्ठिर कृष्ण से बोले, "केशव ! आज द्रोण का रूप बहुत उग्र हो उठा है। ज्ञात होता है दुर्योधन ने आज इन्हें बहुत अधिक चिढ़ा दिया है। इसलिये यह आज प्रचण्ड अग्नि की वर्षा कर रहे हैं।"

कृष्ण मुस्करा कर बोले, "दीपक की लौ, बुझने से पूर्व, इसी प्रकार आकाश को चूमती है, इसी प्रकार भड़कती है धर्मराज ! द्रोण का युद्ध-कौशल देखना है तो देख लीजिये। द्रोण का संरक्षण भीष्म ने किया था। दुर्योधन या धृतराष्ट्र ने नहीं। द्रोण निर्धन उस समय थे जब दादा भीष्म के पास आये थे, इस समय नहीं। फिर क्यों आचार्य द्रोण ने अधर्म का पक्ष लिया ? दादा भीष्म और आचार्य द्रोण ने आपके विरुद्ध युद्ध में भाग लेकर महान अधर्म-कार्य किया हैं। इन दोनों ने अपने उज्जवल चरित्रों पर कालिमा पोतली। दादा भीष्म ने अपनी जीवनभर की अर्जित त्याग और तपस्या की निधि को दुर्योधन के अधर्म की भट्टी में झोंक दिया। इन्होंने, 'पितामह और 'दादा' शब्दों को कलंकित कियाहै। आचार्य द्रोण अपने अचार्य पद् को कलुषित कर रहे हैं। इन्हें पाण्डवों के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण कदापि नहीं करने चाहिये थे।

आप कहेंगे कि दादा और द्रोण के हृदय आपके साथ हैं। मैं उन हृदयों को व्यर्थ समझता हूं जो धर्म के मार्ग पर चलने के लिये व्यक्ति को प्रेरित न कर सके। वे हृदय नहीं, पत्थर हैं। पांचाली के अपमान को मैं अभी भूला नहीं हूं। आचार्य कहलानें वाले यह द्रोण चुपचाप बैठे उस अधर्म कृत्य को सहन करते रहे। इनकी आत्मा नष्ट हो चुकी थी। दुर्योधन के चन्द टुकड़ों ने इन्हें पथभ्रष्ट कर दिया था। इनका ब्राह्मणत्व नष्ट हो चुका था। मेरी दृष्टि में यह घृणा के

पात्र है।

आज यह रण में पराक्रम दिखने चले हैं। कल निरस्त्र बालक अभिमन्यु का निधन कराते इन्हें लज्जा न आई। निहत्थे बालक पर सात-सात महारथियों को झपटते देखकर उसकी रक्षा के लिये इनके भुजदण्ड न फड़के। यह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का स्वप्न देखते रहे और पाण्डव-वीर के निधन के स्थान पर पाण्डव-बालक का निधन करके यह गर्व से फूल उठे। धिक्कार है इनके आचार्यत्व और ब्राह्मणत्व को। इस कलंक को मिटाना होगा धर्मराज! पृथ्वी इस पाप के बोझ से दब रही है।"

धर्मराज का हृदय द्रोण के प्रति आत्मग्लानि से भर उठा। धर्मराज उत्तेजित होकर द्रोण से भिड़ गये। महाराजा विराट और द्रुपद भी उनके साथ थे। द्रोण द्रुपद को देखकर आग बगूला हो उठे। युद्ध की विकरालता बढ़ गई। द्रोण ने द्रुपद और विराट को अपना प्रधान लक्ष बनाया और उन्हें मृत्यु के घाट उतार दिया। इससे युद्ध का रूप और भी भयंकर हो उठा।

द्रुपद के निधन को देखकर उनके पुत्र धृष्टद्युम्न ने अपने पिता के हंतक द्रोण को मारने की प्रतिज्ञा की। वह प्रलय का बादल बनकर उन पर बरस पड़ा।

द्रुपद और विराट के निधन से पाण्डव-दल के क्रोध का पारावार न रहा। उन्होंने द्रोण पर भयंकर आक्रमण किया परन्तु द्रोण अडिग रहे। उनके बाणों की वर्षा पाण्डव-पक्ष का बुरी तरह विध्वंस कर रही थी।

यह देख कर धर्मराज चिंतित हो उठे। कृष्ण इस स्थिति को देख कर बोले, "धर्मराज! जब तक द्रोण के हाथों में धनुषबाण रहेंगे तब तक इन्हें मारना असम्भव है। इस समय नीति से काम लेना होगा। यदि किसी प्रकार इनके कानों में यह स्वर गुंज उठे कि इनका

पुत्र अश्वत्थामा मारा गया तो इनके हाथ ढीले पड़ जायेंगे । पुत्र-शोक में विह्वल होकर धनुष बाण इनके हाथों से गिर पड़ेंगे। तभी इनकी मृत्यु सम्भव है, अन्यथा नहीं।"

धर्मराज द्रोण के निधन के लिये इस षड्यन्त्र में सम्मिलित होने को उद्यत नहीं थे। कृष्ण ने तभी अवन्ति नरेश के अश्वत्थामा नामक हाथी का वध करा दिया। भीम ने कृष्ण के संकेत पर उसे मार डाला और युधिष्ठिर को ये शब्द उच्चारन करने पर वाध्य किया,'अश्वत्थामा मृत नरो वा कुंजारो वा।'

कृष्ण के नीति संचालन में पाण्डव-पक्ष अश्वत्थामा हाथी के मरने पर एक स्वर में चिल्ला उठा, 'अश्वत्थामा मारा गया।'

द्रोण के कानों में अस्वत्थामा के निधन का स्वर पड़ा तो उन्हें विश्वास न हो सका। उन्होंने कृष्ण का विश्वास न किया। वह धर्मराज युधिष्ठिर से इस कथन की पुष्टि चाहते थे। वह युधिष्ठिर के अतिरिक्त वह अन्य किसी का विश्वास करने को उद्यत नहीं थे।

युधिष्ठिर ने कृष्ण के बताये हुए पूर्व निश्चित शब्द उच्चारण किये उनके मुख से ज्यों ही ये शब्द निकले, 'अश्वत्थामा मृत...' तो कृष्ण ने घनगर्जन पूर्ण ध्वनि में बाजे बजावा दिये। द्रोण युधिष्ठिर के केवल इतने ही शब्द सुनपाये। उनके धनुष-बाण उनके हाथों से छूट कर गिर पड़े। उनके बदन में प्राण मानो शेष ही नहीं रहा।

धृष्टद्युम्न अवसर देख रहा था। द्रोण के हाथों से धनुष-बाण गिरते ही उसने उनका सिर उतार लिया और अपने पिता को मृत्यु लोक पहुंचाने वाले का अन्त कर अपने हृदय में जलने वाली ज्वाला को शान्त किया।

द्रोण की मृत्यु का समाचार अश्वत्थामा ने सुना तो उसने पाण्डव-सेना का वध करने के लिये नारायणास्त्र का प्रयोग किया। उससे पाण्डव-सेना भयभीत हो उठी। कृष्ण उस अस्त्र का प्रतिकार

जानते थे। उन्होंने पाण्डव-सेना को सचेत कर उस अस्त्र का प्रभाव विफल कर दिया।

उस अस्त्र का प्रभाव नष्ट होने पर अर्जुन ने अश्वत्थामा को ललकारा। अश्वत्थामा ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया। उस अस्त्र से अग्नि की वर्षा होने लगी। अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कर अश्वत्थामा के आग्नेयास्त्र को ठण्डा कर दिया।

यह देख कर अश्वत्थामा रण-भूमि से भाग खड़ा हुआ। उसके भागते ही कौरव-दल के पैर उखड़ गये और उनकी सेना में भगदड़ मच गई। पाण्डव-पक्ष ने विजय-दुन्दुभी बजा दी।

आचार्य द्रोण की मृत्यु का समाचार जब संजय ने धृतराष्ट्र को दिया तो वह विक्षिप्त हो गये। उन्हें अब अपने पुत्रों की रक्षा की कोई आशा न रही।

कौरव-पक्ष में घोर आतंक छा गया। उनका साहस समाप्त हो गया। दुर्योधन को लगा कि मानो उसके हाथ-पैर सब टूट गये। उसके नेत्रों के सामने अंधकार छा गया। भीष्म और द्रोण की मृत्यु को घाट उतारनेवाले पाण्डवों से वह भयभीत हो उठा। उसने आज प्रथम बार पाण्डवों की शक्ति का अनुमान लगाया। उसका भ्रम चूर्ण हो गया परन्तु अब उससे कोई लाभ नहीं था।

१०

भीष्म के निधन के पश्चात कर्ण ने युद्ध में भाग लिया परन्तु आचार्य द्रोण के रहते उसे प्रधान सेनापति बनने का अवसर न मिला जब द्रोण भी परलोक सिधार गये तो कर्ण ने प्रधान सनापति के पद को सुशोभित किया। अब उसे पाण्डवों से सीधा मोर्चा लेने का अवसर मिला।

कर्ण ने दुर्योधन को समझाया कि अभी तक उनकी पराजय के कारण दादा भीष्म और आचार्य द्रोण थे। उनके हृदयों में व्याप्त पाण्डवों की ममता उन्हें जमकर पाण्डवों पर प्रहार नहीं करने देती थी। फलस्वरूप कौरवों की निरन्तर हार होती जा रहा है।

कर्ण को सेनापति-पद् पर आरूढ़ कर दुर्योधन कुछ निश्चिन्त हुआ। उसे विश्वास था कि उसका सेनापति विश्वासपात्र है। वह अपने हृदय में पाण्डवों के प्रति ममता के स्थान पर द्वेष रखता है। आशा और उमंग स उसका मस्तक ऊपर उठ गया। उसकी छाती उत्साह से फूल उठी। कर्ण की वीरता और उसके पराक्रम पर उसे पूर्ण विश्वास था।

दुर्योधन न अपने पक्ष में कर्ण के सेनापति होने की घोषणा की तो महाराज्य शल्य की आतमा कुण्ठित हो उठी। उन्हें अपने रहते कर्ण का सेनापति बनना अपना अपमान प्रतीत हुआ।

कौरव-सेना में कुछ उत्साह का संचार हुआ और उन्होंने भीष्म तथा द्रोण को भुला देने का प्रयास किया।

कर्ण के सेनापति बनने का समाचार बाणों की शय्या पर पड़े भीष्म के कानों में पहुंचा तो उन्होंने एक सेवक को भेज कर दुर्योधन को बुलाया और मुस्कराकर बोले, "बेटा दुर्योधन! तुमने मुझ पर और

आचार्य द्रोण पर विश्वासघाती होने का दोषारोपण किया था। हमने इस महायुद्ध का इतने दिन तक संचालन किया और अधर्म-युद्ध होते हुए भी इतने दिन धर्म का सामना किया। अब देखते हैं तुम्हारा मित्र कर्ण पाण्डवों के सामने कितने दिन ठहर पाता है।" यह कह कर दादा भीष्म ने अपने नेत्र बन्द कर लिये। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य कोई शब्द उच्चारण नहीं किया।

दुर्योधन अपने शिविर को लौटा तो कर्ण शिविर के सामने खड़ा था। कर्ण को देख कर दुर्योधन गम्भीर वाणी में बोला, "कर्ण! मुझे अभी-अभी दादा भीष्म ने चुनौती दी है। उन्होंने मुझसे उनपर लगाये गये आक्षेप का उत्तर मांगा है। उसका उत्तर देना तुम्हारी वीरता पर निर्भर करता है। दादा भीष्म को अपनी पराजय पर भी गर्व है। वह कहते हैं कि वह और आचार्य द्रोण पराजित होते हुए भी इतने दिन तक पाण्डवों के सामने डटे रहे। अब देखना है कि कर्ण कितने दिन पाण्डवों से लोहा लेता है।"

अभिमानी कर्ण यह सुन कर गम्भीर वाणी में बोला, "महाराज दुर्योधन! आपकी आज तक की पराजय के कारण केवल मात्र दादा भीष्म और आचार्य द्रोण थे। यदि मैं प्रथम दिन से सेनापति होता तो आपको यह दिन देखना न पड़ता। कौरव-पक्ष की आज तक जो क्षति हुई है वह सब आचार्य द्रोण और दादा भीष्म ने जान-बूझ कर कराई है।

मैं कितना शिघ्र इस क्षति को पूरा करता हूँ, तुम देखना।"

दुर्योधन को कर्ण के मुख से यही बात सुनने की आशा थी। सूर्य देवता उदय हुआ चाहते थे और रणभेरी बजने का समय हो गया था। दुर्योधन ने कर्ण के गले में प्रधान सेनापति का हार पहिना दिया और कर्ण रणभूमि की ओर बढ़ गया।

कर्ण ने आज आधी रात से ही उठ कर अपनी सेना को अभेद्य व्यूह के रूप में गठित किया था। पाण्डव-पक्ष के व्यूह की रचना आज

अर्जुन ने की थी। वही आज पाण्डवों के सेनापति थे।

आज का युद्ध विचित्र प्रकार से चला। सामूहिक आक्रमणों के स्थान पर व्यक्तिगत युद्ध ही मुख्य रूप से लड़े गये। अर्जुन संसप्तकों से युद्ध कर रहे थे। भीम अश्वत्थामा से लड़ रहे थे। धृष्टद्युम्न, सात्यिकि और शिखण्डी इधर-उधर शत्रुओं का संहार कर रहे थे। अन्य राजे भी इसी प्रकार युद्ध में रत थे।

कर्ण ने युद्ध में प्रवेश करते ही सर्वप्रथम पांचाल देश के वीरों को समाप्त करने का बीड़ा उठाया। उसकी अर्जुन से मुठभेड नहीं हुई।

अश्वत्थामा अस्त्र-शस्त्र-संचालन में बहुत निपुण था, परन्तु आज भीम के सामने उनका सब उत्साह और रण-कौशल फीका पड़ता जा रहा था। भीम ने अश्वत्थामा को मूर्छित कर दिया। पिता की मृत्यु के शोक ने उसे निरुत्साहित कर दिया था।

अर्जुन के सामने संसप्तक त्राहि-त्राहि कर उठे। अश्वत्थामा सचेत होकर संसप्तकों की रक्षा के लिये वहाँ पहुंच गया। अश्वत्थामा ने अर्जुन को ललकारा तो अर्जुन संसप्तकों को छोड़ कर अश्वत्थामा पर टूट पड़े। अर्जुन की मार के सामने अश्वत्थामा अधिक देर तक न ठहर सका। वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

अर्जुन ने फिर अपनी दिशा संसप्तकों की ओर बदली तो बीच में महारथी दण्डधर आगये। दण्डधर ने अपने हाथी को आगे बढ़ा कर कृष्ण पर तोमर का वार किया। अर्जुन ने तोमर को बीच में ही काट कर एक तीर से दण्डधर का सिर धड़ से पृथक कर दिया। दण्डधर को गिरते देखकर उसका भाई अर्जुन से आ भिड़ा। अर्जुन ने उसे भी धराशायी कर दिया।

अब अर्जुन निर्भीक होकर संसप्तकों में घुस गये। उनके हृदय में उनके प्रति क्रोधाग्नि धधक रही थी, क्योंकि उन्होंने ही अर्जुन को अभिमन्यु की रक्षा से वंचित किया था। अर्जुन ने उनका चुन-चुन कर संहार करना आरम्भ कर दिया। अर्जुन के बाणों की मार को वे

सहन न कर सके ।

संसप्तकों का विध्वंस देखकर नारायणी सेना अर्जुन के सामने आगई । सत्यसेन ने क्रोधित होकर अपने तोमर से कृष्ण पर प्रहार किया, जिससे कृष्ण का बांया हाथ घायल होगया । कृष्ण के हाथ का घोड़ा हांकने का चाबुक भूमि पर गिर पड़ा । यह देख कर अर्जुन की क्रोधाग्नि अत्यन्त प्रबल हो उठी । उन्होंने एक ही बाण से सत्यसेन को समाप्त किया । अर्जुन ने चित्रवर्मा और चित्रसेन को भी यमलोक पहुँचा दिया ।

अर्जुन के शिष्य सात्यकि ने भी कौरव पक्ष में हाहाकार कार वातावरण उपस्थित कर दिया था । उसने कैकेयराज को यमलोक पहुँचाकर उनकी सेना को रणभूमि से भगा दिया ।

कर्ण पाचालों को नष्ट करने पर अपनी समस्त शक्ति लगा रहा था । यह देखकर नकुल सामने आडटे, परन्तु कर्ण के बाणों ने उन्हें घायल कर दिया । वह कर्ण के सामने न ठहर सके ।

इसी प्रकार युद्ध होते-होते भुवनभास्कर अस्ताचल को चले गये । शांति-बिगुल बजा और दोनों पक्षों के सैनिक अपने-अपने शिविरों को लौट गये ।

आज के युद्ध से दुर्योधन को सन्तोष रहा परन्तु जो इच्छा वह लिये बैठा था वह पूर्ण न हो सकी । रात्रि को कर्ण और दुर्योधन की मंत्रणा हुई, जिसमें कर्ण ने प्रण किया, 'महाराज ! कल या तो अर्जुन का निधन मेरे हाथों से होगा अन्यथा मैं स्वयं वीरगति को प्राप्त हूँगा । यह सत्य है कि अर्जुन के पास घातक अस्त्र हैं, अद्भुत रथ है, अक्षय तूणीर है और सबसे प्रबल शक्ति जो उसके पास है वह कृष्ण की नीति है परन्तु यह सब कुछ होने पर भी यदि मुझे योग्य सारथी मिल जाये तो मैं अर्जुन पर विजय प्राप्त कर सकता हूँ । महाराज ... को यदि आप इस कार्य के लिये उद्यत कर सकें तो कल ... हाथ रहेगी ।"

कर्ण के सुझाव से सहमत होकर दुर्योधन स्वयं महाराज शल्य के पास गये और चाटुकारिता करके उन्हे कर्ण के सारथ्य के लिये उद्यत कर लिया ।

दुर्योधन ने शल्य को धोखे से अपने पक्ष में कर लिया था । पाण्डवों के सगे मामा होने पर भी वह दुर्योधन के धोके में आकर उसे वचन दे बैठे थे और उसकी ओर से युद्ध कर रहे थे ।

महाराज शल्य की सारथ्य के लिये स्वीकृति प्राप्त कर दुर्योधन ने यह समाचार कर्ण को दिया तो कर्ण हर्ष से फूल उठा । महाराज शल्य ने दुर्योधन से स्पष्ट कह दिया था कि वह सारथ्य केवल इसी शर्त पर स्वीकार कर सकते हैं कि उन्हें रथ-संचालन की पूर्ण स्वतन्त्रता हो । वह जैसी परिस्थिति देखेंगे उसी के अनुसार रथ-संचालन करेंगे । उनके रथ-संचालन में कर्ण का किसी प्रकार का हस्ताक्षेप नहीं होगा ।

यह निश्चित हो जाने पर कर्ण का रथ सजाया गया और शल्य ने सारथ्य ग्रहण किया । कर्ण सज-धजकर गर्व के साथ रथ पर बैठा । मारू बाजे के स्वर से आकाश निनाद हो उठा । कर्ण ने हर्ष के साथ अपना शंख फूंका ।

शल्य को सूत-पुत्र के सारथ्य का कार्य सौंपा गया था, इससे उनका हृदय ग्लानि से भर उठा था । उन्हें युधिष्ठिर को दिया गया अपना वचन याद था । उन्होंने युधिष्ठिर को वचन दिया था कि वह कर्ण को निरुत्साहित करते रहेंगे ।

कर्ण शीघ्र युद्ध भूमि में पहुँचना चाहता था और शल्य रथ को धीरे-धीरे हाँक रहे थे । यह देखकर कर्ण बोला, "महाराज ! तनिक शीघ्रतापूर्वक रथ को युद्ध-भूमि में ले चलिये ।"

शल्य बोले, "कर्ण ! मैं रथ-संचालन में कोई कमी नहीं आने दूंगा परन्तु सोच रहा हूं कि उस अर्जुन से तुम कैसे युद्ध कर सकोगे जिसके बाणों को दादा भीष्म जैसे बालब्रह्मचारी सहन न कर सके,

उन्हें तुम कैसे सहन करोगे ? तुम व्यर्थ अपने प्राण गँवाने की बात सोच बैठे हो। अर्जुन के साथ युद्ध में क्या तुम विजयी होने की आशा रखते हो ?"

शल्य की बात सुनकर कर्ण के नेत्र अंगारों के समान दहक उठे परन्तु वह अपने क्रोध को पीगया। वह शल्य को किसी भी प्रकार अप्रसन्न नहीं कर सकता था।

कर्ण युद्ध-क्षेत्र में पहुँच कर घन-गर्जन के समान ललकारा, "पाण्डवो ! कहाँ है वह अर्जुन जो कल दिनभर मुझसे मुँह छिपाये इधर-उधर फिरता रहा। वह अपने को योद्धा समझता है तो मेरे सामने आये और अपनी वीरता का परिचय दे।"

कर्ण की गर्वपूर्ण बात सुनकर महाराज शल्य बोले, "बेटा कर्ण ! क्यों व्यर्थ अपने काल का आह्वान कर रहे हो ? मैं नहीं समझता कि तुम्हें हो क्या गया है जो अपये शीर्ष को रण-चण्डी की भेंट चढाने के लिये इस प्रकार उतावले हो रहे हो। अर्जुन को ललकार कर क्यों अपनी मृत्यु को पुकार रहे हो। उससे युद्ध करना तुम्हारे वश की बात नही है।"

शल्य की यह बात सुनकर कर्ण के क्रोध की सीमा न रही। वह बोला, "महाराज शल्य ! दुर्योधन के आदेश से मैं चुपचाप आपकी बातें सहन कर रहा हूँ। यदि उनका आदेश न होता तो एक क्षण में आपको यमलोक की यात्रा पर भेज देता।"

शल्य ने कर्ण को हतोत्साहित कर दिया था। जब-जब वह उत्साह में भर कर धनुष उठाता था, तब-तब शल्य ऐसी बातें कहते थे कि कर्ण का तन-बदन जल उठता था। उसका मन क्षुब्ध हो उठा।

कर्ण ने देखा महाबली भीम उसके सामने आकर जम गया और उसे युद्ध के लिये ललकार रहा था। कर्ण ने क्रोधित होकर एक बाण भीम की छाती मे मारा और रक्त की धारा बह चली। तीर के लगते ही भीम ने रौद्र रूप धारण कर लिया। वह क्रोधित होकर कौरव-दल

पर बुरी तरह टूट पड़ा। भीम ने एक विषैले वाण का कर्ण पर प्रहार किया, जिससे कर्ण मृतवत होकर रथ पर गिर पड़ा। शल्य चतुराई से रथ को वहाँ से हटा कर एक ओर ले गये।

कर्ण ने सचेत होकर धर्मराज युधिष्ठिर पर आक्रमण किया। इस युद्ध में कर्ण ने युधिष्ठिर और उनके साथियों को लोहूलुहान कर दिया।

युधिष्ठिर की यह दशा देखकर शल्य बोले, "कर्ण ! होश में आ। तू अपनी शक्ति इन लोगों पर व्यर्थ नष्ट कर देगा तो फिर थके घोड़ों को लेकर अर्जुन से क्या युद्ध करेगा ? क्या तू अपनी आज की प्रतिज्ञा को भूल गया ?" यह कहकर शल्य ने कर्ण का ध्यान युधिष्ठिर और उनके साथियों की ओर से हटा दिया।

कर्ण की दृष्टि भीम पर पड़ी जो दुर्योधन को धूलिधूसरित करने की चेष्टा में लगा था। उसने दुर्योधन की ने बुरी गत बना दी थी। उसके होश उड़ गये थे।

कर्ण ने दुर्योधन की रक्षा के लिये अपना रथ उस ओर बढ़ा दिया। नकुल और सहदेव घायल युधिष्ठिर को शिविर में उठाकर लेगये।

अर्जुन संसप्तकों को समाप्त कर वहाँ पहुँचे जहाँ उन्होंने युधिष्ठिर और कर्ण का घमासान युद्ध होता सुना था। युधिष्ठिर को वहाँ न पाकर अर्जुन चिंतित हो उठे। उन्हें पता चला कि आहत धर्मराज को नकुल और सहदेव शिविर में उठाकर लेगये।

कृष्ण तथा अर्जुन ने वहाँ जाकर धर्मराज को देखा। धर्मराज ने समझा कि अर्जुन कर्ण पर विजय प्राप्त करके आया है। परन्तु जब उन्हें पता चला कि कर्ण अभी जीवित है तो धर्मराज सक्रोध बोले, "अर्जुन ! धिक्कार है तुम्हारा गाण्डीव और तुम्हारी प्रतिज्ञा। जिन दिव्यास्त्रों को अपने पास रखकर तुम शत्रु का नाश नहीं कर सकते उन्हें अपने पास रखकर कलंकित न करो।"

युधिष्ठिर की भर्त्सना सुनकर अर्जुन मर्माहत हो उठे। उन्होंने

क्रोधित होकर अपनी कृपाण निकाल ली और बिजली के समान युधिष्ठिर पर झपट पड़े। परन्तु कृष्ण अर्जुन को डाटकर बोले, "अर्जुन! क्या तुम्हारा मस्तिष्क खराब हो गया है? कृपाण म्यान में रखो।"

अर्जुन धर्मराज की ओर देखकर बोले, "कृष्ण! मैं मृत्यु को भी हँसकर अपनी छाती से लगासकता हूं, परन्तु अपमान सहन नहीं कर सकता।"

कृष्ण बोले, "क्या बच्चों जैसी बातें करते हो अर्जुन! धर्मराज को कर्ण ने आहत किया है। इसी से इनका मन कर्ण के प्रति क्रोध से जल रहा है। यह उसका निधन देखना चाहते हैं। यह क्रोधाग्नि में भूल गये कि इन्हें तुमसे कैसी बातें करनी चाहियें। परन्तु मैं देख-रहा हूँ कि तुम सचेत होकर भी अचेत हो उठे हो।"

अर्जुन अपने क्रोध को शान्त करके कृपाण म्यान में रख कर बोले, "धर्मराज! आप आहत होकर यहाँ शय्या पर पड़े हैं। आपको क्या पता कि युद्ध में हम पर क्या गुजर रही है। मैं यहाँ आपकी दशा देखने आया था, भर्त्सना सुनने नहीं। भीम अकेला कर्ण से जूझ रहा है। *मैं संसप्तको का विनाश करके लौटा हूँ। मार्ग में अश्वत्थामा से* मुझे युद्ध करना पड़ा।

आप यों धर्मराज हैं और सभी आपको धर्मराज कहते हैं, परन्तु क्या धर्मराज होने का यही धर्म था कि आप जुआ खेलते? आप जुआ खेलकर हमारा सब राजपाट न खो देते तो क्यों आज कर्ण से जूझना पड़ता? क्यों हम वन-वन मारे-मारे फिरते? क्यों पांचाली का अपमान होता? क्यों अभिमन्यु मारा जाता? यह सब सहन करके भी हमने कभी आपके सामने जुबान नहीं हिलाई। परन्तु आज जब आप हमारी भी भर्त्सना करने पर उतारू होगये तो जुबान खुलगई। मैं भविष्य मे कभी इस प्रकार के अपमान-सूचक शब्द सहन नहीं करूंगा।"

यह सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर उठकर बैठे [illegible]। उन्हें अपने

शब्दों पर हार्दिक खेद हुआ। वह अपनी भूलें स्वीकार करके बोले, "वीर अर्जुन! यह सत्य है कि सब अनर्थों की जड़ मैं ही हूँ। मैं तुमसे विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि तुम कृपाण निकालो और मुझ पापी का प्राणान्त करदो। मैं वास्तव में इसी योग्य हूँ। मुझे इतने नीच कार्य करने के पश्चात जीने का कोई अधिकार नहीं है।"

धर्मराज की यह विनम्र बात सुनकर अर्जुन पानी-पानी होगये। उन्होंने आगे बढ़कर अपने बड़े भाई के चरण छूकर प्रार्थना की, "धर्मराज! अनुज का अपराध क्षमा करके आशीर्वाद दें कि वह कर्ण का निधन करके संध्या को सकुशल लौटे।"

धर्मराज युधिष्ठिर गद्‌गद् हो उठे। उन्होंने अर्जुन को छाती से लगाकर आशीर्वाद दिया। अर्जुन विद्युत-गति से श्रीकृष्ण के साथ समर-भूमि की ओर चल दिये।

भीम को युद्ध में घायल करके कर्ण दूसरी ओर पाण्डव-सेना का संहार करने में लगा हुआ था। कर्ण के हटने पर दुश्शासन भीम की ओर लपका तो आहत होते हुए भी भीम उस पर टूट पड़े। भीम ने दुश्शासन के सारथी को मृत्यु के घाट उतार दिया और दुश्शासन पर गदा का इतना तीव्र प्रहार किया कि वह रथ से बहुत दूर जाकर गिरा। उसका रथ चूर-चूर हो गया। भीम लपक कर दुश्शासन की छाती पर जाचढ़े और क्रुद्ध वाणी में बोले, "नीच दुश्शासन! तेरा काल इस समय तेरी छाती पर बैठा है। तूने जिन हाथों को पांचाली का चीर-हरण करने के लिये बढ़ाया था, ला पहिले उन्हें तोड़दूँ।" यह कहकर भीम ने दुश्शासन के दोनों हाथ तोड़कर उसके शरीर से अलग कर दिये और फिर उसकी छाती चीर डाली।

भीम ने तभी देखा अर्जुन का रथ उनके सामने खड़ा था। दुश्शासन की छाती का रक्तपान करते हुए बोले, "कृष्ण! मेरे हृदय की दहकती हुई वह ज्वाला शान्त हुई जो उस दिन लगी थी जब इस पापी ने पांचाली का चीर-हरण करने के लिये

हाथ बढ़ाया था।"

कृष्ण ने गम्भीर वाणी में कहा, "तुम धन्य हो महाबली भीम! तुम्हारे प्रण की पूर्ति देखकर मेरा हृदय हर्ष से भर उठा है।" यह कहकर उन्होंने अर्जुन का रथ कर्ण की ओर बढ़ा दिया।

युद्ध की यह भयानक स्थिति देखकर अश्वत्थामा दुर्योधन से बोला, "दुर्योधन! इस महायुद्ध में अगणित सैनिक खेत रहे। हस्तिनापुर में तुम्हें अनेकों विधवायें विलाप करती मिलेंगी। उन विधवाओं पर राज्य करके तुम्हें क्या मिलेगा? इस महाकाल के मुख में जब सब-कुछ ही चला जायेगा तो राज्य क्या वन्य-पशुओं पर करोगे? यहाँ जब कोई राज्य भोगने को ही न रहेगा तो क्या स्वर्ग से तुम्हारे भाई राज्य करने आयेंगे? मेरा कहा मानो तो अब इस युद्ध को समाप्त कर दो। युधिष्ठिर अवश्य मेरा आग्रह स्वीकार करलेंगे।"

अश्वत्थामा की नीतिकुशल बातें दुर्योधन को विषैले बाणों के समान लगीं। वह बोले, "अश्वत्थामा! मैं मानता हूँ कि तुम्हारी बातें कौरव और पाण्डव, दोनों के हित की हैं, परन्तु अबकेस्थिति वह बन गई है कि न तो पाण्डव ही अभिमन्यु और घटोत्कच के निधन को भूल सकते हैं और न मैं ही दादा भीष्म, आचार्य द्रोण, पुत्र लक्ष्मण और भाई दुश्शासन की मृत्यु को भुला सकता हूँ। इसलिये इस समय की संधि से मैं मरकर वीर-गति प्राप्त करने को ही अधिक उत्तम समझता हूँ।

इस समय मैं कर्ण और अर्जुन का युद्ध देखना चाहता हूँ। कर्ण अर्जुन से युद्ध करने को लालायित है। आज कर्ण के मन की भी निकल जाने दो। यह महायुद्ध कर्ण के ही भरोसे पर लड़ा गया था।"

कर्ण और अर्जुन का घोर युद्ध ठन गया। कभी कोई किसी की प्रत्यंचा को काट डालता था और कभी कोई। दोनों एक दूसरे को घायल कर रहे थे। दोनों के बदन रक्त से भीग उठे थे। दोनों लोहू-लुहान होगये थे।

आज कृष्ण भी कर्ण की मार से सुरक्षित न रह सके। कृष्ण को घायल होते देख अर्जुन का रक्त उबाल खा गया। उन्होंने कर्ण पर इतनी तीव्र बाण-वृष्टि की कि कर्ण हक्का-बक्का रह गया।

धनुर्विद्या में परास्त होकर कर्ण ने नागास्त्र का अर्जुन को लक्ष्य बनाना चाहा। यह देख कर शल्य बोले, "मूर्ख कर्ण! इस अस्त्र से अर्जुन का बाल भी बांका न होगा?" परन्तु कर्ण ने शल्य की बातों पर ध्यान न देकर नागास्त्र का प्रहार कर दिया।

नागास्त्र को आते देख श्रीकृष्ण ने रथ के घोड़ों को घुटनों के बल बिठा दिया। इससे रथ कुछ टेढ़ा होगया, परन्तु अस्त्र अर्जुन के किरीट को थोड़ा सा काटता हुआ आगे निकल गया।

नागास्त्र से बचकर अर्जुन ने एक ऐसा तीर छोड़ा, जिससे घायल होकर कर्ण विक्षिप्त हो गया। यह देखकर अर्जुन बाण-वर्षा बन्द करने को ही थे कि कृष्ण ललकार कर बोले, "अर्जुन! यही समय है। इस समय का धर्म तुम्हारी कायरता कहलावेगा।"

अर्जुन ने फिर गाण्डीव संभालकर कर्ण पर अनवरत बाण-वृष्टि करनी प्रारम्भ करदी।

कर्ण भी सचेत होकर फिर अर्जुन पर बाण-वृष्टि करने लगा, परन्तु कर्ण के रथ का पहिया कीचड़ में धंस गया था।

कर्ण अपने रथ का पहिया कीचड़ से निकालता हुआ अर्जुन से बोला, "अर्जुन! धर्म कहता है कि इस अवसर पर तुम्हें बाण चलाना बन्द करदेना चाहिये। निरस्त्र पर वार करना अधर्म है।"

यह सुनकर कृष्ण ललकारकर बोले, "जब सिर पर मृत्यु मँडराती है तो अधर्मी भी धर्म की दुहाई देते हैं कर्ण! तुम्हारा धर्म उस समय कहां चला गया था जब कौरव सभा में पांचाली को चीर उतारने के लिये लाया गया था? तुम्हारा धर्म तब कहां था जब तुम सात महारथियों ने मिलकर निरस्त्र बालक अभिमन्यु की निर्मम हत्या की थी? आज तुम धर्म की दुहाई देने चले हो?"

अभिमन्यु का नाम कृष्ण की जुबान पर आते ही अर्जुन पागल हो उठे और कर्ण को तीखे बाणों से बींधना, प्रारम्भ कर दिया। अर्जुन ने अवसर देखकर एक विषबाण कर्ण के सिर का लक्ष करके छोड़ा, जिससे कर्ण निष्प्राण होकर गिर पड़ा।

कर्ण के मृत्यु की भनक होते ही पाण्डवों ने विजय-दुन्दुभी बजादी। पाण्डव-पक्ष का वातावरण आनन्द से भर उठा। उनकी विजय-दुन्दुभी को सुनकर कौरव-पक्ष में निराशा छागई।

दुर्योधन कर्ण की मृत्यु का समाचार पाकर रो पड़ा। कौरव-पक्ष के महारथियों ने उसे लाख समझाने का प्रयास किया, परन्तु वे उसे धैर्य न बंधा सके। वह रोता बिलखता अपने शिविर को चला गया। दुर्योधन के नेत्रों के सामने घोर निराशा का वातावरण था। उसने जो स्वप्न देखा था, उसकी छाया भी अब उसके नेत्रों के सामने से हट चुकी थी। वह किंकर्तव्यविमूढ़ सा आकर अपने शिविर में अचेत होकर गिर पड़ा।

धृतराष्ट्र को कर्ण का निधन का समाचार मिला तो वह बैठे-बैठे ही कांप उठे। दुःशासन की मृत्यु ने उनके हृदय को और भी विदीर्ण कर दिया। उन्हें अब अपनी पराजय के लक्षण स्पष्ट दिखाई देने लगे। उनके पुत्र दुर्योधन की रक्षा करनेवाला अब कोई नहीं था। गांधारी अपने भाई की मृत्यु का समाचार प्राप्त कर अचेत हो गई।

११

दादा भीष्म को कर्ण की मृत्यु का समाचार मिला तो उन्होने दुर्योधन को बुलाया और गम्भीर वाणी में बोले, "बेटा दुर्योधन ! तुम्हारा परम मित्र कर्ण भी अब मृत्यु का ग्रास होगया । मैंने और द्रोण ने तुम्हारे विपक्षी पाण्डवों के शुभचिंतक होने पर भी इतने दिन तक युद्ध-संचालन किया, परन्तु तुम्हारा परम हितैषी मित्र दो दिन भी पूरे न कर सका ।

इस से तुम्हारे मन का वह भ्रम दूर हो जाना चाहिये कि हमने तुम्हारे साथ विश्वासघात किया ।

मैं अब अंतिम वार तुमसे कहता हूँ कि तुम पाण्डवों से संधि कर-लो । कुरु-वंश को विनाश से बचाओ । विनाश में अब देर नहीं है ।"

यह कहकर दादा भीष्म ने नेत्र बन्द कर लिये और दुर्योधन विना कोई उत्तर दिये अपने शिविर की ओर चल दिया । वह शिविर में पहुँचा तो कृपाचार्य वहाँ आगये । कृपाचार्य का हृदय ग्लानि से भरा हुआ था । वह बोले, "दुर्योधन ! जो होना था, सो होचुका । दोनों पक्षों का शक्ति-परीक्षण होगया । तुम्हारे लगभग सभी महारथी युद्ध खेत रहे। अब किस लिये व्यर्थ ज़िद कर रहे हो ? और क्या देखना है ?

मेरा कहा मानो तो युद्ध वन्द करदो । पाण्डवों के पास संधि-पत्र दो । भाइयों से संधि करने में अपमान का प्रश्न नहीं उठता । पाण्डव तुम्हारे संधि-पत्र को ठुकरायेंगे नहीं, मुझे पूर्ण विश्वास है । भी इसे अस्वीकार नहीं करेंगे । यदि तुम चाहो तो मैं स्वयं संधि-पत्र लेकर पाण्डवों के शिविर में जाने को उद्यत हूँ ।"

दुर्योधन बोला, "आचार्य ! आप जो कुछ कह रहे हैं, वह मेरे

हित की बात है। मुझे अब संदेह भी नहीं रहा है कि विजय पाण्डवों की ही होगी। आप अभिमन्यु की मृत्यु के शोक से पीड़ित अर्जुन के हृदय की दशा को जानते हैं और भीम का प्रण भी आपसे छिपा नहीं है। पांचाली ने प्रतिज्ञा की हुई है कि जब तक उसके अपमान का बदला न लिया जायेगा तब तक वह भूमि-शयन करेगी। पाण्डवों की सब प्रतिज्ञायें पूर्ण हो चुकी हैं। केवल भीम की प्रतिज्ञा शेष है और वह भी अवश्य पूर्ण होगी।

आप मेरे हित की बात सोच रहे हैं, परन्तु मैं अब वह रोगी हूँ जो कड़ुवी औषधि पीने की अपेक्षा प्राण देना अधिक सुखकर समझता है। अब न तो पाण्डव ही संधि-प्रस्ताव स्वीकार करेंगे और न मैं भेजूँगा ही। अपने परिवार को अपनी आँखों के सामने नष्ट कराकर मैं अकेला किस लिये जीवित रहूँ? इस समय संधि-प्रस्ताव भेजने को मैं कायरता समझता हूँ। संधि राजनीति का एक अंग अवश्य है, परन्तु अब वह संधि किस लिये? अब विजय या मृत्यु के अतिरिक्त मेरा अन्य कोई मार्ग नहीं हो सकता।"

तभी अश्वत्थामा आ पहुँचा। दुर्योधन ने पूछा, "भाई अश्वत्थामा! अब किसे सेनापति बनाया जाय?"

अश्वत्थामा बोले, "आयु, विद्या, बुद्धि और पराक्रम की दृष्टि से अब महाराज शल्य को सेनापति बनाना चाहिये।"

दुर्योधन को यह प्रस्ताव मान्य हुआ। इसकी स्वीकृति के लिये वह महाराज शल्य के शिविर में पहुँचे। उन्हें सादर प्रणाम करके दुर्योधन ने अपना प्रस्ताव उनके सामने रखा। वह बोले, "मामा! यद्यपि रिश्ते में आप नकुल और सहदेव के सगे मामा हैं, उनसे कुछ प्रथक युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन के और फिर मेरा स्थान आता है, परन्तु आपने वचन-बद्ध होकर मेरा साथ दिया है और जो वीरता दिखाई उसके लिये मैं आपका हृदय से आभार मानता हूँ। आप जैसे प्रतिज्ञा-पालक महारथी को प्राप्त कर मैं अपने को धन्य मानता हूँ। मैं आपसे सानुरोध प्रार्थना

करता हूं कि आप हमारी सेना का प्रधान सेनापति-पद ग्रहण करें।"

महाराज शल्य बोले, "दुर्योधन! मुझे तुम्हारा आग्रह मानने में संकोच नहीं है। मैं युद्ध-भूमि में पाण्डव तो क्या सुरराज भी आये तो उसका भी मुँह मोड़ सकता हूँ।"

सेनापतित्व का गौरव शल्य की नस-नस में भर उठा। उनके नेत्र बन्द होगये और धर्म-अधर्म का विचार उनके मस्तिष्क से जाता रहा। उन्होंने सहर्ष अपनी स्वीकृति प्रदान की।

दुर्योधन ने उन्हें दूसरे दिन के युद्ध का सेनापति घोषित किया।

महाराज शल्य ने व्यूह-रचना की और स्वयं व्यूह के द्वार-रक्षक का भार सँभाला। अन्य कौरव-वीरों को यथास्थान नियुक्त कर पाण्डव-सेना पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

शल्य की व्यूह-रचना को देखकर पाण्डवों ने भी अपनी सेना में पूर्ण तय्यारी कर ली। धृष्टद्युम्न, सात्यकि और शिखंडी ने कौरवों के मुख्य द्वार पर जाकर महाराज शल्य से युद्ध किया और कृपाचार्य की सेना को भीम ने ललकारा।

धर्मराज युधिष्ठिर ने आज शल्य का रौद्र रूप देखा तो वह भी सात्यकि और धृष्टद्युम्न की सहायता के लिये व्यूह के मुख-द्वार पर पहुँच गये। युधिष्ठिर की तीखी वाण-वृष्टि के सामने कौरवों का ठहरना कठिन हो गया। शल्य ने आज पराक्रम दिखाने में कोई कसर नहीं रखी और ऐसी वाण-वर्षा की कि युधिष्ठिर का रथ वाणों की छाया में लुप्त होगया। तभी युधिष्ठिर का एक वाण शल्य की छाती में लगा और वह मूर्छित होकर रथ पर गिर पड़े।

इस आघात से शल्य बहुत क्रोधित हुए। वह द्विगुण रोष के साथ युधिष्ठिर से लड़ने लगे, परन्तु युधिष्ठिर के वाणों ने उनके बदन को छलनी बना दिया था। शल्य के धनुष को युधिष्ठिर ने काट कर फेंक दिया।

यह स्थिति देख कर शल्य तलवार लेकर रथ से कूद पड़े। भीम ने

दूर से शल्य को तलवार लेकर धर्मराज युधिष्ठिर की ओर दौड़ते देखा तो वहीं से एक बाण मारा जिससे शल्य की तलवार टूक-टूक होकर भूमि पर गिर पड़ी। तब शल्य खाली हाथ ही युधिष्ठिर की ओर झपटे।

युधिष्ठिर ने शल्य को अपनी ओर आते देखकर एक ऐसा बाण मारा जिससे उनकी लोक-लीला समाप्त हो गई। शल्य के मरते ही पाण्डवों ने विजय-दुन्दभी बजादी। कौरव-सेना भाग खड़ी हुई। दुर्योधन ने लाख प्रयास किया, परन्तु सेना आगे बढने को उद्यत न हुई। अर्जुन के बाणों के सामने कौन जाकर अपने प्राण देता।

यह स्थिति देख कर दुर्योधन भी अपने शिविर की ओर भागा। दुर्योधन को भागते देखकर अर्जुन ने उसे ललकारा। अर्जुन की ललकार सुनकर दुर्योधन ने अपना रथ रोका और अर्जुन के बाणों का उत्तर दिया। कौरव-सेना के उखड़ते हुए पैर फिर जमगये। पाण्डव भी अर्जुन की सहायता के लिये वहां पहुँचे। दुर्योधन ने भयंकर युद्ध किया, परन्तु कहाँ अर्जुन और कहाँ दुर्योधन।

कृष्ण अर्जुन से बोले, "अर्जुन! आज इस नीच दुर्योधन की भी प्राण-लीला समाप्त होनी चाहिये। हमे आज ही इसे समाप्त कर विजयोत्सव मनाना है।"

अर्जुन बोले, "कृष्ण! आपकी सम्मति मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ, परन्तु दुर्योधन को महाबली भीम ने मारने की प्रतिज्ञा की हुई है। यह उन्ही का शिकार है। मुट्ठीभर कौरव अब हमारा क्या बिगाड़ सकते हैं?"

दुर्योधन ने पूर्व दिशा के तालाब में एक पोला स्तम्भ बनवाया हुआ था। वह अपनी गदा लेकर उसी तालाब की ओर भाग खड़ा हुआ और जल मे जा छिपा। मार्ग में उसे संजय मिला। उसे उसने अपनी सारी सेना के विध्वस की कथा सुनाई। अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा भी उसी मार्ग पर जारहे थे। मार्ग में संजय से भेंट हुई तो उसने उन्हें दुर्योधन के विषय मे बताये

कहा, "महाराज दुर्योधन इस समय तालाब में बने स्तम्भ में छिपे हैं। मैं महाराज धृतराष्ट्र के पास उनका संदेश लेकर जा रहा हूँ।"

अश्वत्थामा दुर्योधन की ओर चल दिया। रात्रि के अंधकार में उसने दुर्योधन को पुकारा। दुर्योधन ने अश्वत्थामा की आवाज पहिचानकर उसे उत्तर दिया।

उसी समय कुछ लोग उधर से पाण्डवों की सेना का भोजन लेकर जा रहे थे। उन्हें ज्ञात होगया कि दुर्योधन तालाब के अन्दर बने खोखले स्तम्भ में छिपा था। यह सूचना उन्होंने जाकर पाण्डवों को दी।

पाण्डव सेना सहित तालाब पर आगये। पाण्डव-सेना को तालाब की ओर आते देखकर अश्वत्थामा बोला, "महाराज दुर्योधन! आप स्तम्भ में छिपे रहिये। मैं वट-वृक्ष के नीचे चला जाता हूँ। पाण्डव-सेना इधर आरही है। मैं आपसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आज रात्रि में पाँचों पाण्डवों का वध करदूँगा।"

तालाब के निकट पहुँच कर कृष्ण की अनुमति से सर्वप्रथम युधिष्ठिर ने दुर्योधन को युद्ध के लिये ललकारा।

दुर्योधन बोला, "मैं अकेला हूँ और घायल होकर अपनी रक्षा के लिये यहाँ पड़ा हूँ। आप लोग इस समय जाकर विश्राम करें। मैं कल समर-भूमि में आपसे लड़ूँगा।"

युधिष्ठिर बोले, "हमने निश्चय कर लिया है कि आज भोजन तुम्हें मार कर ही करेंगे। अपने बन्धु-बान्धवों को मरवाकर यहाँ छिपते तुझे लज्जा नहीं आती। तालाब से बाहर निकल और वीर-गति को प्राप्त हो।"

दुर्योधन बोला, "मैं अकेला हूँ युधिष्ठिर! तुम ससैन्य हो। क्या यह युद्ध धर्म-विरुद्ध नहीं होगा? अकेले-अकेले मैं तुम पाँचों भाइयों से लड़ने को उद्यत हूँ।"

युधिष्ठिर बोले, "नीच! धर्म का नाम मुख से उच्चारण करते तुझे लज्जा नहीं आती। तू बाहर निकल और एक से ही युद्ध कर।"

अब दुर्योधन पानी मे छिपा नहीं रह सकता था। वह बाहर निकल आया। भीम से उसका युद्ध आरम्भ होगया।

उसी समय एक ओर से बलरामजी वहाँ आ गये। सब ने बलरामजी का अभिवादन किया। भीम और दुर्योधन का गदा-युद्ध हो रहा था। बलरामजी बोले, "मैं बयालीस दिन के तीर्थाटन पर गया था। आज अचानक यहाँ आ पहुँचा। मेरी यह उत्कट इच्छा थी कि किसी दिन अपने दोनों शिष्यों का गदा-युद्ध देखूँ। यह स्थान गदा-युद्ध के लिये बहुत उपयुक्त है। यहीं महाभारत का अंतिम निर्णय होगा।"

दुर्योधन और भीम का भयंकर गदा-युद्ध हो रहा था। दुर्योधन ने भीम के कवच की कड़ी-कड़ी तोड डाली थी। यह देखकर कृष्ण अर्जुन से बोले, "अर्जुन ! भीम युद्ध के जोश में अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये हैं। इन्हें किसी संकेत से इनकी प्रतिज्ञा याद दिलाओ।"

कृष्ण का संकेत पाते ही अर्जुन ने अपनी जंघा पर हाथ मारकर भीम को ललकारा तो भीम को अपनी प्रतिज्ञा याद आई।

दुर्योधन भीम पर गदा का प्रहार करके नौ-दस हाथ ऊपर कूद जाता था और भीम प्रहार सहकर भी उसपर प्रहार न कर पाते थे। इस बार ज्यों ही प्रहार करके दुर्योधन ऊपर कूदा तो भीम ने उसका पैर पकडकर उसे भूमिपर दे मारा और एक ही वार मे उनकी जाँघा तोड डाली। दुर्योधन की हड्डियाँ चकनाचूर हो गईं। वह उठने योग्य न रहा।

गदा-युद्ध में कमर से नीचे प्रहार करना वर्जित था। भीम का दुर्योधन की जंघा पर प्रहार देखकर बलरामजी क्रुद्ध हो उठे और वह भीम को मारने के लिये दौडे।

यह देखकर कृष्ण ने बलराम जी का हाथ पकड लिया और उन्हें भीम की प्रतिज्ञा की याद कराते हुए भरी सभा मे पांचाली को दुर्योधन

द्वारा अपनी जंघा पर बिठाने की बात कही तो उनका क्रोध शान्त हुआ। फिर दुर्योधन के अन्याय और सात महारथियों द्वारा मिलकर अभिमन्यु को मारने की बात उन्होंने बलरामजी को सुनाई तो वह शान्त होकर बोले, "ठीक है कृष्ण ! परन्तु मुझे यह नीतिविरुद्ध कार्य अच्छा नहीं लगा। मैं अब यहाँ नहीं ठहर सकता।" इतना कहकर बलरामजी वहाँ से चले गये।

पाण्डव भी अपने शिविर को लौट गये।

कौरव-पक्ष में अब केवल अश्वस्थामा, कृतवर्मा और कृपाचार्य शेष रह गये थे। वे पाण्डवों के वहाँ से चले जाने पर दुर्योधन के पास आये। दुर्योधन के बदन की सब हड्डियाँ चकनाचूर हुई पड़ी थीं।

अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने दुर्योधन को पुकारा तो उसने नेत्र खोल दिये। वह बोला, "आचार्य-पुत्र अश्वस्थामा ! यह रोने का समय नहीं है। मैं न मरता तो मुझे खेद होता। मैं स्वर्ग में जाकर अपने बन्धु-बान्धवों से भेंट करूंगा। उनके बिना मैं जीवित रहकर क्या करता ?"

अश्वस्थामा बोला, "महाराज ! कुछ भी क्यों न हो, मैं ब्राह्मणत्व की सौगंध खाकर कहता हूँ कि मैं आज रात्रि में पाण्डवों को उनके अन्याय का फल चखाये बिना न रहूँगा। मैंने निश्चय कर लिया है कि आज रात्रि में उनका मेरे हाथों अन्त होगा।"

अश्वस्थामा की बात सुनकर दुर्योधन तनिक सँभल गया, मानो बुझते हुए दीपक में किसी ने कुछ बूँदें तेल की डाल दीं। उसने आशा-पूर्ण दृष्टि से अश्वस्थामा की ओर देखा।

दुर्योधन ने कृपाचार्य से एक कलश पानी मँगाकर अश्वस्थामा को कौरव-सेना का अंतिम सेनापति घोषित किया और कहा, "मैं तुम्हारी प्रतिक्षा करूंगा अश्वस्थामा !"

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ पाण्डव-शिविर की ओर चल दिया।

दुर्योधन की दोनो जंघा चकनाचूर होगई थीं। वह हिल-डुल नहीं सकता था। उसका कंठ सूख गया था और उसे दो घूंट जल देने वाला भी कोई नहीं था। उसे उस समय अपनी मृत्यु का उतना दुःख नहीं था जितना पाण्डवो के जीवित रहने का था। अन्तिम समय उसे अश्वत्थामा से प्रतिज्ञा ली कि वह पाण्डवों का ही वध करेगा, अन्य किसी का नहीं।

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा अपने मुँह छिपाते हुए पाण्डव-शिविर के निकट पहुँचे। वे एक तालाब के किनारे जाकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। अश्वत्थामा के हृदय में अपने पिता द्रोण के घातकों को मृत्यु के घाट उतारने की प्रचण्ड ज्वाला सुलग रही थी। वह क्रोधानल में जल रहा था।

कृपाचार्य बोले, "बेटा! थकावट और पिता की मृत्यु के कारण तुम्हारा मन अस्वस्थ हो गया है। धर्म का मार्ग छोड़ कर अधर्म का मार्ग मत अपनाओ। इसमें तुम्हें सफलता नहीं मिलेंगी। हम लोग कल तीनों ही युद्ध-भूमि में पाण्डवों को ललकारेंगे और वीर-गति को प्राप्त होंगे।"

अश्वत्थामा बोला, "धर्म का समय समाप्त हो चुका आचार्य! पाण्डवों ने ही कौन धर्म-युद्ध किया है जो धर्म के नाम पर उन्हें छोड़ दिया जाये। सामने लड़कर उन पर विजय प्राप्त करना असम्भव है। आप लोग मेरा साथ देना चाहें तो दें, अन्यथा मैं अकेला ही जाता हूँ।

यह कहकर अश्वत्थामा पाण्डव-शिविर की ओर चल पड़ा। कृपाचार्य और कृतवर्मा भी अन्य कोई उपाय न देखकर उसके पीछे-पीछे हो

लिये। तीनों व्यक्ति पाण्डव-शिविर के निकट पहुँच गये।

अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा को शिविर-द्वार पर छोड़ कर वह स्वयं अन्दर घुसा। उसने शिविर में धृष्टद्युम्न को अपनी रानी के पास सोते देखा। धृष्टद्युम्न को उसने वहीं समाप्त कर दिया।

उसके शिविर से बाहर निकलते ही धृष्टद्युम्न की रानी रोने-चिल्लाने लगी। इससे शिखण्डी, पांचाली तथा उसके पाँचों पुत्र जाग उठे। उन्होंने देखा अश्वस्थामा शिविर में आ घुसा था। शिखण्डी अश्वस्थामा पर टूट पड़ा, परन्तु वह नींद से उठा था, इसलिये पूर्ण सचेत न था। अश्वस्थामा ने तलवार के एक ही वार से उसका सिर काट कर गिरा दिया। शिखण्डी को मारकर अश्वस्थामा ने शिविर में आग लगादी।

अश्वस्थामा वहाँ से भागकर द्वार पर खड़े कृपाचार्य और कृतवर्मा के पास पहुँच गया और जो लोग प्राण बचा कर जलते हुए शिविर के बाहर जाने लगे उन्हें एक-एक करके समाप्त करता गया।

अश्वस्थामा ने रात्रि के अंधकार में पांचाली के पाँचों पुत्रों के सिर उतार लिये। वह उन्हें पाँचों पाण्डव समझ रहा था। उनके सिरों को लेकर वह रात्रि के अंधकार में खिलखिला कर हँसता हुआ उधर भागा जिधर दुर्योधन पड़ा अपने जीवन की अंतिम घड़ियाँ गिन रहा था। दुर्योधन के बदन का सब रक्त निकल चुका था और मुँह पीला पड़ गया था, परन्तु इस दशा में भी उसने अश्वस्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा को अपनी ओर आते देखा तो उसके नेत्रों में प्रकाश उतर आया। उसे लगा जैसे प्राण उसमें फिर लौट आये।

अश्वस्थामा ने अपनी वीरता का वर्णन किया तो दुर्योधन के चेहरे पर प्रसन्नता दौड़ गई। अश्वस्थामा ने जब यह कहा कि उसने पाँचों पाण्डवों को समाप्त कर दिया तो वह खिलखिला कर हँस पड़ा परन्तु

जब अश्वत्थामा ने पाँच कटे हुए सिर उसके सामने रखे तो दुर्योधन के मुँह से 'आह' निकल गई। वह उन सिरों को देखकर रो पड़ा और अश्रु ढुलकाता हुआ बोला, "अश्वत्थामा! नीच! तूने यह क्या किया? पांचाली के इन बालकों को मारकर तूने क्या लिया? जा हट! मेरी आंखों के आगे से दूर होजा।" यह कहकर दुर्योधन के नेत्र बन्द होगये और वह सर्वदा के लिये धरती माता की गोद में सो गया।

अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा वहाँ से भागकर दूर मैदान में निकल गये। रात्रि के अंधेरे मे वे दौड़े चले जा रहे थे।

१२

पाँचों पाण्डव, कृष्ण और सात्यकि दुर्योधन को लगभग समाप्त कर निश्चिन्त हो गये थे। वे अपने डेरों पर न जाकर सरिता के पार चले गये थे। रात्रि में जब उन्हें अपने शिविरों में ज्वाला की लपटें उठती और आकाश को चूमती दिखाई दीं तो वे नौका पर सवार होकर उधर दौड़े।

उनके वहाँ पहुँचने से पूर्व ही वहाँ सब कुछ समाप्त होचुका था। दृश्य बहुत ही हृदय-विदारक था। चारों ओर कुहराम मचा था। रात्रि का अंधकार चारों ओर छाया हुआ था। हाथ-को-हाथ दिखाई नहीं दे रहा था। पांचाली और धृष्टद्युम्न की पत्नी के विलाप का स्वर वहाँ गूंज रहा था।

उन्होंने शिविरों से उठने वाली ज्वाला के प्रकाश में अश्वस्थामा को भागते हुए देखा। उसे देख कर महाबली भीम का रक्त खौल उठा। वह उसके पीछे दौड़ पड़े। उनके साथ उनके अन्य चारों भाई भी उधर दौड़े।

अश्वस्थामा ने उन्हें अपनी ओर आते देखकर ब्रह्मास्त्र से प्रहार किया। उस अस्त्र को भीम की ओर आते देखकर अर्जन ने उसे बीच में ही काट दिया।

अश्वस्थामा फिर भाग लिया और पाँचों पाण्डव उसके पीछे लगे रहे। उसी समय सामने से वेदव्यास आते दिखाई दिये। उन्होंने हाथ उठाकर पाण्डवों को रोका।

वेदव्यास बोले, "पाण्डव-पक्ष के महारथियो! विध्वंस पराकाष्ठा को पहुँच चुका है। क्या क्षमा को आप लोग संसार से सर्वदा के लिये समाप्त कर देना चाहते हैं? अश्वस्थामा ने जघन्य अपराध किया है,

परन्तु वह तुम्हारा गुरु-पुत्र है। उसे क्षमा-दान दो। तुम लोगो ने भी द्रोण का धर्म से संहार नही किया था ।"

वेदव्यास की बात सुनकर श्री कृष्ण मुस्कराकर बोले, "महामुनि व्यास ! क्या अधर्म को अधर्म से समाप्त करना अधर्म है ? क्या आचार्य द्रोण का कौरव-पक्ष की ओर से युद्ध करना धर्म था ?"

वेदव्यास गम्भीर वाणी मे बोले, "योगिराज ! आचार्य द्रोण और दादा भीष्म के कौरव-पक्ष की ओर से युद्ध करने को मैं उनकी भयंकर भूल ही नही, महान् अपराध मानता हूँ। वे बलरामजी की भाँति यदि तटस्थ रहते तो यह भयंकर मानव-संहार न होता। दुर्योधन पाण्डवों से युद्ध करने का साहस उन्ही के बल पर कर सका। यदि युद्ध होता भी तो तीन दिन से अधिक न ठहरता। मैं इस भयकर नर-हत्या-काण्ड का सबसे बड़ा दोषी दादा भीष्म को मानता हूँ। इन्द्रियजित बाल-ब्रह्मचारी भीष्म, जिनके तप और तेज ने आचार्य कच और माता देवयानी के त्याग और तपस्या को कुरु-वंश मे साकार प्रस्तुत किया, जिसने अपना सम्पूर्ण जीवन विमाता के पुत्रो, पौत्रो और उनके बच्चों के निमित्त अर्पण कर दिया, वही अपने अन्तिम काल मे इतने दुर्बल हो गये कि कुरु राज्य मे द्यूत-सभा का आयोजन होता देख सके। अपने कुल की उसी मर्यादा को, जिसे उन्होने अपने रक्त से सींचा था, द्यूत-सभा द्वारा अपनी आँखो के सामने कलंकित होते देखा।

उससे भी घृणित कार्य पाचाली का भरी सभा मे अपमान होना था। दादा भीष्म और आचार्य द्रोण का उस कृत्य को मौन बैठे देखते रहना उनकी मृत्यु का द्योतक था। दादा भीष्म और आचार्य द्रोण की मृत्यु इस महायुद्ध में नही हुई, बल्कि उसी समय हो चुकी थी। उनकी आत्मा का हनन हो चुका था। भारद्वाज ऋषि की सन्तान द्रोण को उस दिन के पश्चात् कुरु-वंश का अन्न-जल ग्रहण नही करना चाहिये था। दादा भीष्म को उसी दिन धृतराष्ट्र को राज्यच्युत कर देना चाहिये था।

उस समय यदि माता देवयानी का रक्त कृष्ण के रूप में न होता -

तो कुरु-वंश की मर्यादा उसी दिन मिट्टी में मिल गई होती । मैंने यह बदलता युग अपनी आँखों के सामने देखा है। इसका भविष्य भारत-भूमि के लिये कितना भयंकर होगा, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

अब तुम लोग सब हस्तिनापुर जाओ । महाराज धृतराष्ट्र और गांधारी के साथ कोई दुर्व्यवहार न हो, इसका ध्यान रखना ।"

पाण्डवों ने व्यासजी के चरण छूकर उनका आदेश पालन करने की शपथ ली ।

संजय ने महाराज धृतराष्ट को दुर्योधन के निधन की सूचना दी तो वह उसे सुनकर मूर्छित हो गये। उनके दिल में भीम के प्रति द्वेषाग्नि भड़क उठी । उसी समय महात्मा विदुर उनके पास आ पहुँचे । उन्होंने धृतराष्ट को सांत्वना देने का प्रयास किया, परन्तु धृतराष्ट्र के हृदय की अग्नि शान्त न हो सकी । उन्होंने पाण्डवों से भेट करने की इच्छा प्रकट की । विदुर, धृतराष्ट और संजय रणस्थल की ओर चल पड़े ।

दादा भीष्म शर-शय्या पर पड़े युद्ध की अन्तिम सूचना प्राप्त करने की प्रतीक्षा में थे । कृष्ण पाण्डवों के साथ उनके निकट पहुंचे और उनके चरण छूकर पाण्डवों की विजय का समाचार दिया ।

यह समाचार पाकर दादा भीष्म का चेहरा खिल उठा । उन्होंने कृष्ण की ओर देखकर कहा, "कृष्ण ! तुमने एक दिन युद्ध में मेरी [illegible]र्त्संना की थी । उस दिन से आज तक मैं शर-शय्या पर पड़ा-पड़ा उसी [illegible]र विचार करता रहा और अन्त में इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि [illegible]स्तव में इस समस्त काण्ड का मैं ही एक मात्र दोषी हूँ । [illegible]यरता मनुष्य का सबसे बड़ा पाप है । मैं कायर बन गया था । मैंने [illegible]ं को राजा का दास समझ लिया और उससे मेरी आत्मा का हनन [illegible], अधर्म के विरुद्ध खड़ा होने की मुझमें शक्ति नहीं रही । मैंने [illegible] को धर्म से ऊपर स्थान दिया। परिणाम स्वरूप मैंने दुर्योधन [illegible]ाचारों को सहन किया ।

कारीगर लोहे का पुतला बनाकर ले आया। कृष्ण पाण्डवों को अपने साथ लेकर महाराज धृतराष्ट्र के पास पहुँचे और उन्हें सादर प्रणाम किया। वह बोले, "महाराज! आपने व्यर्थ कष्ट किया। पाण्डव तो स्वयं ही आपकी चरण-रज लेने के लिए आपकी सेवा में उपस्थित होनेवाले थे।"

धृतराष्ट्र मुस्करा कर बोले, "मैंने सोचा कृष्ण! में स्वयं ही यहाँ आकर अपने भतीजों को अपने साथ राजधानी में ले चलूँ। कहाँ है बेटा भीम?"

यह सुनकर कृष्ण ने भीम को पीछे खींच लिया और सर्व प्रथम युधिष्ठिर को उनके पास भेजा। युधिष्ठिर ने उन्हें प्रणाम किया तो उन्होंने अनिच्छा से उनके सिर पर हाथ रखकर उन्हें एक ओर कर दिया। महाराज धृतराष्ट्र की भुजायें भीम को खोज रही थीं। वह बोले, "भीम ने महाभारत में सबसे अधिक पराक्रम दिखाया है। मैं उसे आशीर्वाद देना चाहता हूँ। उसे मेरे पास लाओ।"

कृष्ण मुस्करा कर लोहे का बना भीम महाराज धृतराष्ट्र के सम्मुख खड़ा करके बोले, "महाराज,! भीम आपके सामने है। आप इस पर अपना प्यार उड़ेलें और इसे गले से लगायें, क्योंकि यही आपको सबसे अधिक प्रिय है।"

महाराज धृतराष्ट्र ने लोहे के भीम को अपनी बाहुओं में भरकर पीस डाला। महात्मा विदुर ने धृतराष्ट्र का यह रूप देख कर कृष्ण की ओर देखा और मुस्करा दिये।

धृतराष्ट्र ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति इतने आत्मबल के साथ लगाई कि पुतले के गिरते ही वह स्वयं भी विक्षिप्त से होकर पृथ्वी पर गिर पड़े और हाय भीम, हाय भीम कहकर चिल्लाने लगे। लोहे के भीम का चूर्ण करते ही दुर्योधन की मृत्यु का संताप उनके हृदय से जाता रहा। वह अपने मन से भीम को मारने के पश्चाताप विह्वल हो उठे। उनका सारा बदन कांप रहा था।

कृष्ण मुस्कराकर बोले, "महाराज ! आपके हृदय की भावना को मैंने आपके यहाँ आते ही जान लिया था । इसी लिये भीम को आपकी बाहुओं में न देकर मैंने लोहे का भीम आपको गले से लगाने के लिये दिया था । आपका भीम आपके सामने खड़ा है ।"

धृतराष्ट्र लज्जा से नतमस्त हो गये । वह कृष्ण के सामने आत्म-ग्लानि से झुक गये ।

सब लोग मिलकर हस्तिनापुर चले गये । हस्तिनापुर का वायु मण्डल स्त्रियों के विलाप से पूर्ण था । जिधर देखो विलाप का स्वर सुनाई देता था । राजमहलों में भी विलाप और उदासी के अतिरिक्त और कुछ नहीं था ।

युधिष्ठिर ने मृतकों का विधिवत तर्पण किया । पाण्डव विजयी अवश्य हुए परन्तु बंधु-बांधवों का जो संहार हुआ था उससे उनकी आत्मा दुखी थी । इतने बड़े संहार ने युधिष्ठिर को वीतरागी बना दिया था । राजभवन उन्हें काटने को दौड़ते थे ।

एक दिन उन्होंने अपने भाइयों को भी इसी प्रकार का उपदेश दिया तो अर्जुन बोले, "महाराज ! यदि वनवास ही प्रिय था तो क्यों व्यर्थ इतना बड़ा नर-संहार किया ? दुर्योधन को आनन्द से राज्य करने देते । उनका अन्याय केवल हम लोगों के प्रति ही तो था । प्रजा तो उनसे प्रसन्न थी ।"

युधिष्ठिर बोले, "अर्जुन ! यह सब तो ठीक है जो तुम कह रहे हो, परन्तु मेरा मन राज-सुख भोगने की दिशा में प्रेरित नहीं हो रहा, मैं क्या करूँ ?"

भीम बोले, "महाराज ! आप तो सर्वदा त्याग का ही उपदेश देते आये हैं । यदि त्याग का यही रूप आपके सामने था तो अर्जुन ने सच कहा कि आपने क्यों व्यर्थ इतना बड़ा नर-संहार कराया ?"

पांचाली बोली, "महाराज ! क्या अपनी उन सब
जो वन के कष्टों को सहन करते समय कहा

प्राप्त कर आप वीतरागी बन रहे हैं।"

युधिष्ठिर सबको अपने विरोध में देखकर बोले, "मेरा निश्चय अटल है पांचाली ! मैं इस विषय में कोई तर्क नहीं सुनना चाहता। क्षत्रिय-धर्म में तुम सब मुझसे कहीं अधिक निपुण हो, परन्तु धर्म का ज्ञान तुम सबका नगण्य है।"

ये बातें चल ही रही थीं कि तभी वेदव्यास वहाँ आगये। सब ने उठ कर उन्हें प्रणाम किया और आसन देकर पधारने का आग्रह किया। धर्मराज के वीतरागी होने का समाचार प्राप्त कर व्यासजी बोले, "युधिष्ठिर ! क्षात्र-धर्म का उचित पालन कर राज्य करने से संसार का हित होता है, पापी दण्ड पाते हैं और सज्जन शान्ति प्राप्त करते हैं, संसार में सुख तथा शांति की व्यवस्था होती है और अन्यायियों का दमन होता है। वीतरागी होने से केवल मात्र अपने ही मन को शांति प्राप्त होती है।"

धर्मराज बोले, "आपके उपदेश का उलंघन करने की क्षमता मुझमें नहीं है भगवन् ! परन्तु हृदय असंतोषी हो उठा है। हमने दादा की हत्या की है। आचार्य द्रोण को धोखे से मारा है। मैं अभिमन्यु की मृत्यु का कारण बना हूँ। हमने बड़े भाई कर्ण को मारा है। इस सबसे मेरा मन आत्मग्लानि से भरगया है। मेरे भाई मेरा अनुकरण करें या राज्य-सुख भोगें, परन्तु मुझे इस सब का प्रायश्चित करने के लिये वनवास को जाना ही होगा। इसके बिना मेरी आत्मा को शांति नहीं मिलेगी।"

श्री कृष्ण ने व्यासजी की बात का समर्थन करते हुए कहा, "धर्मराज ! धर्म कर्म से विमुख होने का नाम नहीं है। वह धर्म अधर्म है जो मनुष्य की कर्म-प्रवृत्ति को रोकता है। कर्मण्य होकर अकर्मण्य होने की चेष्टा न करो। आपकी यह त्याग की भावना अकर्मण्यता की द्योतक है। राज्य-भार सँभालिये और प्रजा-जनों के संतप्त हृदय को सांत्वना प्रदान कीजिये। क्या अपने मन की शांति के लिये आप

समस्त प्रजा को अशांति की ज्वाला में झुलसने के लिये निराश्रित छोड़ जाना चाहते हैं ? अब तक जितने अधर्म-कार्य आपने गिनाये वे सब नगण्य हैं। यह अकेला कार्य आपको महान् अधर्मी और अकर्त्तव्य-परायण घोषित करेगा।"

कृष्ण की बात सुनकर धर्मराज बोले, "जब आपकी भी यही इच्छा है कृष्ण ! तो मैं राज्य-भार संभालूंगा। मेरा मन अशान्त है, इस लिये अभी आप कुछ दिन यहीं बने रहें।"

व्यासजी बोले, "राजभवन में चलकर राजमुकुट ग्रहण करो युधिष्ठिर ! और राज्याभिषेक के पश्चात् राजर्षि भीष्म के दर्शन करो।"

व्यासजी के आदेशानुसार श्रीकृष्ण के साथ युधिष्ठिर, पांचाली और पाण्डवों ने नगर में प्रवेश किया। युयुत्सु, सात्यकि, विदुर इत्यादि भी उनके साथ हो लिये।

नगर को सजाया गया। एक बार फिर से हस्तिनापुर में मंगल छागया। इस आनन्द के वातावरण में एक गहरी कसक थी, अन्तर्वेदना की चिरस्मृति थी, परन्तु पाण्डवों की धर्मपरायणता पर हस्तिनापुर की प्रजा मुग्ध थी। प्रजा ने पाण्डवों का स्वागत किया।

राजदरबार सजाया गया। यथा समय सब लोगों ने अपने-अपने आसनों को ग्रहण किया। कौरवों के बचे-खुचे सरदारों को क्षमादान देकर दरबार में आने की आज्ञा दी गई। धर्मराज युधिष्ठिर राज-सिंहासन पर बैठे।

श्रीकृष्ण ने धर्मराज का राजतिलक किया। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिये और भाटों ने विरुदावलियाँ गाईं। मंगलगान से राजभवन गुंजायमान हो उठा।

भीम युवराज, विदुरजी राजमंत्री, संजय उपदेशक, नकुल सेनापति,

अर्जुन गृहमंत्री और इसी प्रकार सब प्रतिष्ठित जनों को उपाधि वितरित कीं गईं। महाराज धृतराष्ट्र को पिता तुल्य सम्मान प्रद किया गया और सभी राजकार्यों में उनका मत लेना आवश्यक मा गया।

हस्तिनापुर के राज्य का ढाँचा बदल गया। धर्मराज ने युद्ध मे काम आये कौरव तथा पाण्डव-पक्ष के सैनिकों के परिवारों का भार वहन किया। इससे प्रजाजनों में सन्तोष की लहर दौड़ गई।

राज्य की व्यवस्था ठीक कर युधिष्ठिर कृष्ण से बोले, "कृष्ण! सूर्य के उत्तरायण होने का समय निकट आगया। हमें पितामह के पास चलना चाहिये।"

कृष्ण ने सहमति प्रदान की और कुछ विशिष्ठ लोग रथों पर सवार होकर कुरुक्षेत्र की ओर चल पड़े।

कृष्ण ने आगे बढ़कर पितामह को प्रणाम किया और बोले, "दादा! पाण्डव आपके अन्तिम दर्शनार्थ आये हैं। आपका आशीर्वाद प्राप्त करने की इनके मन में उत्कट इच्छा है।"

दादा भीष्म बोले, "बच्चो! तुमने क्षात्र-धर्म का पालन किया है। अन्यायी को परास्त कर धर्मपूर्वक राज्य करना क्षत्री का धर्म है। वही तुमने किया है। तुम जैसा प्रजापालक राजा प्राप्त कर वसुन्धरा धन्य होगी।"

पाण्डवों ने दादा के चरणों पर अपने मस्तक टिका दिये और विह्वल कर पाँचों भाई बिलख-बिलख कर रो पड़े। दादा भीष्म के भी पसीज उठे। उनके नेत्रों के दोनों कोनों में दो मोटे-मोटे आँसू आये।

दादा भीष्म कुछ देर पश्चात् बोले, "पांचाली! तुमने कुरु-वंश को दण्ड दिया। यह इसी योग्य था। इसकी संतान ने अपने पूर्वजों र्यादा को नष्ट कर दिया था। माता देवयानी के उज्ज्वल